सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

वर्ष : 47
अंक : 7
अक्टूबर 2014

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाई- 283202 (आगरा) उ.प्र.

प्रकाशित तिथि - 01.10.2014

एक प्रति : रु. 20

अमृत कण

माता च कमला देवी पिता देवो जनार्दनः।
बान्धवा विष्णुभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रियम्।।

(चाणक्यनीति दर्पण)

अर्थात् लक्ष्मी देवी जिसकी माँ है, सर्वव्यापक आनन्द दाता परमेश्वर जिसका पिता है और परमेश्वर के भक्त जिसके बन्धु हैं ऐसे मनुष्य के लिए तीनों लोक ही अपने देश के समान हैं।

◆ ◆ ◆

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिर पैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं ह्रीरचापलम्।।

(श्रीमद् भगवद्गीता)

अर्थात् मन, वचन, कर्म से किसी को कष्ट न देना, यथार्थ और मधुर वचन बोलना, अपने प्रति अपकार करने वाले पर भी क्रोध न करना, चित्त में शान्ति रखना, किसी की निन्दा न करना, सबके प्रति दयाभाव रखना, विषयों के प्रति आसक्ति व अति न करना, लोक और शास्त्र की मर्यादा के विरुद्ध आचरण में लज्जा करना और व्यर्थ काम न करना – ये सब सच्चरित्रता के लक्षण हैं।

◆ ◆ ◆

भद्रं कर्णेभि श्रुणुयाम देवाः भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवा ँसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः।।

(ऋग्वेद)

हम कानों से शुभ विचार ही सुनें, आँखों से शुभ दृश्य ही देखें। स्वस्थ एवं सबल शरीर तथा शुद्ध मन से प्रभु की स्तुति करते हुए, विद्वानों की मर्यादा से युक्त कल्याणकारी आयु (जीवन) को भली भांति प्राप्त करें।

◆ ◆ ◆

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः।
दुःख भागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च।।

(मनुस्मृति)

दुराचरण करने वाले चरित्रहीन व्यक्ति की सब जगह निन्दा होती है, वह सदा दुःखी व रोगी रहता है और पूरी आयु न भोग कर अकाल मौत मरता है (अर्थात् अपनी पूरी आयु न भोग कर रोगों के कारण क्षीण–काय होने से अकाल मौत मरता है वरना पूरी आयु भोगता)।

◆ ◆ ◆

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :—शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 47 | अक्टूबर 2014 | अंक : 7

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षु –
र्न लिप्यते चाक्षुषैर्वाह्यदोषैः।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा
न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः।

कठोपनिषद् 2/2/11

अर्थात्

जिस प्रकार समस्त ब्रह्माण्ड का प्रकाशक सूर्य देवता लोगों की आँखों से होने वाले बाहर के दोषों से लिप्त नहीं होता; उसी प्रकार सब प्राणियों का अन्तरात्मा एक परब्रह्म परमात्मा लोगों के दुःखों से लिप्त नहीं होता क्योंकि सबमें रहता हुआ भी यह सबसे अलग है।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – *योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज*	3
2.	सम्पादकीय	9
3.	योग की महिमा – डॉ. ऋषिराम	13
4.	श्री सद्‌गुरुदेव द्वारा प्राण रक्षा – योगी विनोद कुमार	19
5.	गोरखपुर में सिद्धगुफा संवाई आश्रम का प्रति.–प्रो. रुद्रदत्त	20
6.	यस्तं वेद स वेदवित्– पं. कृष्ण पाण्डेय	21
7.	दर्शनाभिलाषा – श्री भूपेन्द	25
8.	कुण्डलिनी– शक्ति का जागरण – श्री गोपी नाथ जी	26
9.	हमारी आध्यात्मिकता –.डॉ. शंकर दत्त ओझा	23
10.	महान दु:ख	32
11.	योग प्रचार कार्यक्रम	33
12.	योग और विक्षेप	34
13.	श्री मद्‌भागवत में योग–परिचर्चा – डॉ. विजय सिंह जी	37
14.	मेरे श्री गुरुदेव और उनका प्राकट्य दिवस – ए.के. सिंह जी	41
15.	प्रेरक–प्रसंग	46
16.	श्री सद्‌गुरु महिमा – स्वं. श्री ईश्वरीप्रसाद खड्ग	47

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 160.00
द्विवार्षिक	: रु. 280.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 900.00

या निशा सर्व भूतानाम् तस्यां जागर्ति संयमी

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

मैंने तुम्हें पहले भी व्याख्यानों में कई बार समझाया है – ' **ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाध्नत्** ' ब्रह्मचर्य एवं तप से देवताओं ने मृत्यु को जीत लिया है। केवल योगी व ब्रह्मचारी ही मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लिया करते है। यह ब्रह्मचर्य बल का बहुत बड़ा परिचय है। इसलिये भगवान कृष्ण की उक्ति के अन्दर '**श्रद्धया लभते जानम्**' तत्परः संयतन्द्रियः श्रद्धावान ज्ञान को प्राप्त होता है। यह कहकर श्रद्धा व संयम की महिमा कही गई है। श्रद्धा सतोगुण का उद्रेक होता है। योगदर्शन में आरम्भ में '**अथ योगानुशासनम्**' तथा इसके बाद **यागेश्चित्तवृत्तिनिरोधः** अर्थात् चित्तवृति का निरोध योग है, यह बतलाया है **चिन्तवृत्तीनाम् नितरां रोधः** अर्थात् चित्तवृतियों का नितराम् रोध ही योग कहलाता है। अपने भाष्य में भगवान व्यास देव जी ने चित्त की पाँच भूमियों का वर्णन किया है तथा यह बतलाया है कि योग का प्रारम्भ कहाँ से होता है? पहले प्रकार का चित्त मूढावस्था का होता है। घोड़ा, गधा आदि प्राणी इस अवस्था के प्राणी होते हैं। उनके मन में दया धर्म नहीं होता, हिंसा और क्रोध रहा करता है। परपीड़ा में वह आनन्दित होते हैं। इन्हें आसुरि वृत्ति के लोग भी कहते हैं। इस अवस्था में चित्त को पूर्णरूप से तमोगुण ही आच्छादित कर लेता है। दूसरे प्रकार के प्राणी क्षिप्तावस्था के होते हैं। उनके रजोगुण प्रधान तथा सतोगुण और तमोगुण गौण रहा करते हैं। असंख्य प्राणी संसार में रहा करते हैं, किन्तु वे सभी सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण इन प्रकृति संभव गुणों से युक्त रहा करते है। सतोगुण, रजोगुण आदि की भी मात्रायें होती हैं। कोई कम सतोगुणी है तो कोई ज्यादा। इसी प्रकार से रजोगुण और तमोगुण का भी मात्रा भेद से विभाजन होता चला जाता है। एक जैसा स्वभाव किसी का नहीं होता। क्षिप्तावस्था के प्राणियों का यह सिद्धान्त रहता है '**यावत् जीवेत् सुखम् जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पियेत्। भस्मी भूतस्य देहस्य पुनरागमनम् कुतः**' अर्थात जब तक मनुष्य जीवित रहे सुख से रहे, कर्जा उठाकर भी घी पीये। देह भस्म हो जायेगा फिर कहाँ से मिलेगा। ऐसी बातें रजोगुण वाले–प्रवृति शील लोगों के मन में रहा करती हैं वे इसी लोक को मानते हैं परलोक को नहीं मानते। ऐसे लोग अधर्म तथा अन्याय से भी पैसा कमाकर सुख भोगने में विश्वास रखते हैं। तीसरे प्रकार के प्राणी वे होते हैं जिनमें सतोगुण की प्रधानता आ जाती है। अन्य दो गुण गौण रहकर उनके चित्त में रहा करते हैं। इसको ऐसा समझना चाहिये कि जैसे कोई महात्मा है, उसका स्वभाव बहुत ही दयालु है। परोपकारी है। किन्तु कभी न कभी क्रोध की झलक उनमें भी आ जाती है यह जो क्रोध की झलक आई वह रजोगुण के कारण

आई। कभी–कभी प्रमाद आलस्य भी आ जाता है यह तमोगुण के कारण आ जाता है; किन्तु फिर भी उसमें सतोगुण प्रधान रहता है। ऐसे चित्त वाले प्राणियों को विक्षिप्तावस्था के प्राणी कहते हैं **क्षिप्ताद् विशिष्टम् विक्षिप्तम्'** अर्थात् जो क्षिप्त से विशिष्ट होते हैं ऐसे व्यक्ति धार्मिक होते हैं परलोक को मानते हैं। भगवान राम को मानते हैं,कृष्ण को मानते हैं, शिव को मानते हैं किन्तु इन्हें कैसे प्राप्त कर सकते हैं इसका उन्हें कोई रास्ता मालूम नहीं होता। वे सोचा करते हैं– **राम राम रटते रहो जब लग घट में प्राण। कबहुँ तो दीन दयाल के भनक पड़ेगी कान।**

यह मानता है–राम सर्व शक्तिमान हैं, कृष्ण व शिव सर्वशक्तिमान हैं उनके नाम रटने से वे मेरा भला कर देंगे। द्रोपदी ने भगवान कृष्ण को पुकारा **कृष्ण कृष्ण महा योगिन कृष्ण गोपी जन प्रिय : कौरवार्णव निमग्नाम् मां किं न पश्यसि केशव।**

अर्थात् हे कृष्ण आप तो महायोगी हैं। फिर गौरवार्णव में डूबती हुई मुझ द्रोपदी को आप क्यों नहीं देख रहे हैं? उनका महायोगिन कहने का संकेत यह था कि एक साधारण योगी भी अपने भक्तों को देख लेता है और रक्षा कर लेता है आप महायोगी हैं अतः मेरी रक्षा कीजिये। जब एक योगी एकाग्रावस्था में होता है संसार का प्राणी उसे चाहे कामना से याद करता है, क्रोध से याद करता है, प्रेम से याद करता है अर्थात जो उसके प्रति जैसी भावनायें रखकर याद करता है, वह उस योगी को मालूम हो जाता है। उन व्यक्तियों के मनोभाव के अनुसार ही उनका सूक्ष्म शरीर वैसे–वैसे ही हरकतें करता हुए दिखाई देता है। गीता में भगवान ने– **'या निशा सर्वभूतानाम् तस्यां जागर्ति संयमी। यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुने :।।** की बात कही है इसका अर्थ यह है कि सांसारिक लोग बाहर की वस्तुयें देखते हैं, बाहर के शब्द सुनते हैं, बाहर का स्पर्श करते हैं, किन्तु भीतरी जगत का उन्हें कोई ज्ञान नहीं होता। इसके विपरीत–मुनि लोग भीतरी दुनिया के अन्दर जागे हुये होते हैं। वे भीतर के नजारे देखा करते हैं, भीतर का स्पर्श पाते हैं, दिव्य रस लेते हैं, अपनी भीतरी दुनियाँ में ही मग्न रहते हैं, वे बाहर के नजारे नहीं देखा करते। उनके लिये बाहर की दुनियाँ का महत्व नहीं रहता।

किन्तु इसमें एक बात और भी है जो मैं तुम्हें कहना चाहता हूँ वह यह है कि अधिकांश समाधि लगाने वाले–भजन करने वाले रात्रि को ही भजन किया करते हैं। तीर्थ स्थानों में रहने वाले साधक चाहे हरिद्वार हो, ऋषिकेश हो, श्रीवृन्दावन हो–साधु लोग रात में ही ज्यादा अभ्यास किया करते हैं। उसका खास कारण मैंने पहले बताया था कि जब एक योगी ध्यान में बैठता है तो उस एकाग्रता में उसके सामने लोगों के चित्त आया करते हैं। उस योगी के प्रति यदि कोई प्यार की भावना करता है तो उसका सूक्ष्म शरीर प्यार का अभिनय करता हुआ दिखाई दे जाता है, यदि कोई क्रोध करता है तो क्रोध का अभिनय करता हुआ दिखाई दे जाता है, जिसका जैसा–जैसा भाव उस योगी के प्रति होता है, उसका वह भाव सूक्ष्म शरीर के द्वारा योगी के सामने व्यक्त हो जाया करता है। किन्तु जो लोग रात्रि में अभ्यास करते हैं उनके सामने ये बातें नहीं आतीं। इसका कारण केवल मात्र एक हैं कि उन सब के मन रात्रि में सुषुप्ति में चले जाते हैं

अभाव प्रत्ययावलाम्बनम् वृत्तिर्निदा' निद्रा में ज्ञान का अभाव रहता है। निद्रा प्रगाढ़ होती है। उस समय मन दब जाता है; क्रियाशील नहीं रहता। जागृत अवस्था में हमारा मन क्रियाशील रहता है। स्वप्न के अन्दर भी मन इस प्रकार के विचारों के अन्दर घूमता रहता है, किन्तु सुषुप्ति में मन दबा रहता है। उस समय मन में किसी प्रकार का भाव नहीं रहता। इसलिये योगी लोग रात्रि में ध्यानाभ्यास करते हैं! क्योंकि दुनियाँ वालों का मन उस समय अपने कारण में–सुषुप्ति में लय रहता है। इसलिये लोगों की ओर से योगी को कोई विघ्न नहीं होता। अभ्यास में अन्तराय पैदा नहीं होता। लोगों की भावनायें आती रहे तो मन में अन्तराय आ जाते हैं। मुझे एक घटना याद आई। एक बार मैं और मेरे बड़े गुरु भाई ब्रह्म. गोपालानन्द जी श्री वृन्दावन गये। वहाँ हम दोनों रात्रि में केशी घाट चले गये। दोनों अभ्यास में बैठ गये। कुछ देर बाद उन्होंने मुझसे कहा– तुम सो जाओ। मैं ध्यान में बैठा रहूँगा। मैंने कहा–भाई जी ! आप सोयेंगे नहीं'। वे कहने लगे, नहीं। श्याम सुन्दर मुझ से कहते हैं कि यहाँ आकर भी तू सोयेगा? इसलिये मैं नहीं सोऊँगा। उन्होंने मुझे यह भी बताया कि यह जो सेवा कुञ्जका दायरा इस समय देख रहे हो इससे एक–एक मील दूर तक सेवा कुञ्ज का दायरा है। सेवा कुञ्ज में दिव्य दृष्टि रहती है। इसलिए भाई गोपालानन्द जी ध्यान में ही बैठे रहे उन्हें दिव्य दर्शन व अनुभव होते रहे। भगवान का दिव्य तेज वहाँ व्याप्त है अत: वहाँ सांसारिक अन्तराय नहीं आया करते।

योगी जब समाधि में होता है उसकी सब वृत्तियाँ शान्त हो जाती हैं–**आपूर्यमाणम चल प्रतिष्ठं समुद्रमाप: प्रविशान्ति यद्वत। तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न काम कामी।।**

जिस प्रकार से सारे नदी नाले समुद्र में आकर विलीन हो जाते हैं। उसी प्रकार से योगी की समस्त वृत्तियाँ समाधि में लीन हो जाती हैं। **स: शन्तिमाप्नोति न कामकामी'** ऐसा योगी ही शान्ति को पाता है। कामनाओं का चिन्तन करने वाला शान्ति नहीं पाता हमने आनन्दकन्द श्री प्रभु जी के चरणों में सूक्ष्म जगत की अनेक घटनायें देखीं हैं। अच्छे–अच्छे ध्यानी ध्यान में जो देखा करते थे वह सत्य ही होता था। एक बार मैं ऋषिकेश आश्रम में आनन्दकन्द प्रभु जी के चरणों में बैठा हुआ था। हमारे अन्य कई गुरु भाई व योगिराज मुल्खराज जी महाराज आदि भी बैठे हुये थे। हमारे ध्यानी गुरु भाईयों ने कई दिन देखा कि कोई आकर श्री प्रभु जी के चरणों में बार–बार प्रणाम कर रहा है। प्रभु जी उसे बार–बार आशीर्वाद दे रहे हैं। वास्तव में वह साधु आया नहीं था, सूक्ष्म से ही आया था। श्री प्रभु जी के चरणों में बैठे ध्यानियों ने ध्यान में देखने का प्रयत्न किया कि आखिर यह कौन साधु है जो नित्य प्रात: श्री प्रभुजी को प्रणाम करने आता है। उन्होंने ध्यान में देखा वह साधु ब्रह्मपुरी में रहता है और नित्य वहीं से श्री प्रभु जी को प्रणाम किया करता है। देखो ! जिस समय हम लोग भी ध्यान में बैठते हैं तो श्री प्रभु जी को प्रणाम करते हैं। जंगलों में जो साधु रहते है, उनका गुरुदेद से सम्बन्ध होता है। वे वहीं से गुरुदेव को प्रणाम करते हैं। उनका प्रणाम गुरुदेव तक पहुँचता है। ध्यानियों ने उस ब्रह्मपुरी वाले साधु को देखा कि वह

रोज श्री प्रभु जी को प्रणाम करता है और प्रभु जी उसकी सहायता करते हैं। इसी प्रकार एक और घटना मुझे याद आई। श्री प्रभु जी काश्मीर की यात्रा पर गये उनके साथ में श्री मुल्खराज जी महाराज तथा बहिन ऋषिदेवी आदि थी। वहाँ जम्मू के राजा हरिसिंह श्री प्रभु जी के भक्त थे। श्री प्रभु जी को उन्होंने कुछ दिन अपने यहाँ ठहराया। श्री प्रभु जी के ध्यानी बच्चे ध्यान में देखा करते थे कि एक पागल सा आदमी नित्य आकर श्री प्रभु जी के चरणों में विनीत भाव से प्रणाम करता है और प्रभु जी उसे प्यार से आशीर्वाद देते हैं। ध्यानी लोग एक दूसरे लड़के को भी देखा करते थे कि गन्द में लिबड़ा रहने वाला लड़का नित्य प्रभु जी के पास प्रणाम करने आता है और आशीर्वाद पाता है। एक दिन महाराज हरिसिंह ने श्री प्रभु जी से प्रार्थना की कि महाराज ! आज कहीं घूमने चलें। श्री प्रभु जी ने कहा– आज हम तुम्हारा पागल खाना देखेंगे। महाराज को बहुत आश्चर्य हुआ कि पागल खाना भी कोई देखने की चीज है। किन्तु गुरुदेव की आज्ञानुसार पागलखाना पहुँच गये। वहाँ एक पागल बन्द था। वह प्रभु जी को देखते ही अन्दर कोठरी से ही बार–बार दण्डवत प्रणाम करने लगा। श्री मुल्खराज महाराज आदि देखने लगे कि यह वही लड़का है जो प्रभु जी को नित्य प्रणाम करने आता है और प्रभु जी खूब प्यार करते हैं। श्री प्रभु जी ने कहा– उसे छोड़ दो यह पागल नहीं है यह योगी है। प्रभु जी की आज्ञा से उसे छोड़ दिया गया। प्रभु जी ने कहा– इस पहाड़ी पर चढ़ जाओ एवं आगे की साधना में लग जाओ। वह तुरन्त पहाड़ी पर चढ़ गया। दूसरे दिन फिर इसी प्रकार से भ्रमण पर चल पड़े। उस दिन प्रभु जी ने कहा–आज गन्दे नाले की तरफ चलते हैं। श्री प्रभु जी ने मुल्खराज महाराज को आगे भेज दिया और कहा–ध्यान में देखना जिस–जिस के चेहरे पर तेज फैल रहा हो उनसे कहना ! प्रभु जी आ रहे हैं ! श्री मुल्खराज जी आगे–आगे गये। उन्हें आगे एक लड़का मिला। गन्दे नाले में पड़ा हुआ था मल मूत्र उसके पास से बह रहा था। मक्खियाँ भिनक रही थीं। श्री मुल्खराज जी ने उसके तेज को देखकर कहा। प्रभु जी आ रहे हैं। उसने कहा– हाँ आ रहे हैं। वह ही मुझे यहाँ डाल गये थे। वह ही उठायेंगे। श्री प्रभु जी वहाँ पहुँच गये। उनके पहुँचते ही वह लड़का खड़ा हो गया और तेजी से उनके चरणों में लिपट गया। श्री प्रभु जी ने उसे उठा लिया और उस गन्द से लिबड़े हुये को ही कण्ठ से लगा लिया। उसे आगे की साधना बता कर उसे भी सामने की पहाड़ी पर चले जाने की आज्ञा दे दी।

एक बार हमारा योग प्रचार का कार्यक्रम जम्मू काश्मीर का था। वहाँ हमें नन्दलाल नाम का योगी मिला था। उसकी वहाँ काफी प्रसिद्धि थी। हमारा यह अनुमान है कि गन्दे नाले वाला वह लड़का ही नन्दलाल था। अस्तु। मैं ये सब बातें इस बात को समझाने के लिये ही कह रहा हूँ कि जो चिन्तन शील साधक हैं वे गुरुदेव को नमन करते हैं उनका चिन्तन करते हैं उनका वह नमन व चिन्तन उन तक पहुँच जाता है। उस पागल ने पागल खाने में भी श्री प्रभु जी का चिन्तन रखा और गन्दे नाले वाले ने भी चिन्तन रखा। श्री प्रभु जी को ये सब पता रहीं तभी तो वे पागलखाने गये, गन्दे नाले की ओर गये। ये सब उनके भीतरी ज्ञान का परिणाम है। मैं तुम्हें

विक्षिप्तावस्था वाले प्राणियों के विषय में समझा रहा था। इसके पश्चात् चौथी श्रेणी के प्राणी एकाग्रावस्था के होते हैं। उनमें सतोगुण चमक उठता है। सतोगुण ही एकाग्रता का दाता होता है। एकाग्रता वाले मन में दया होती है, धर्म होता है, प्रेम एवं करुणा होती है। भगवान ने '**श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्**' कहा है। श्रद्धा चित्त की प्रसन्नता का नाम है। सतोगुण का उद्रेक श्रद्धा है। एकाग्रावस्था से पहले जो चिन्तन करते रहे, भजन करते रहे वह बाह्य वृत्ति को रखकर करते रहे। हम स्तुति करते हैं माला घुमाते हैं। रामाय नमः, शिवाय नमः का जप करते हैं किन्तु अनुभूति नहीं होती। '**अकरणात् करणं श्रेयः**'। कुछ न करने से करना अच्छा है किन्तु मन के एकाग्र न होने से हमें विशेष उपलब्धि नहीं हो पाती। जब मन की एकाग्रता से सतोगुण चमक उठता है तो जिसका चिन्तन करते हैं उनके दर्शन हमें होने लगते है इसी को **सम्प्रज्ञात योग** कहते हैं। चित्त वृत्तियों का समूलोन्मूलन तो असम्प्रज्ञात समाधि में ही होता है। व्युत्थान में अथवा समाधि से उठने के बाद जिसकी जैसी वृत्ति स्वभाव होता है, वह वैसे ही चेष्टा करता है। इसी को '**वृत्ति सारूप्यमितरत्र**' कहते हैं। गीता मे भी भगवान ने '**सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि**' कहा है। अर्थात् ज्ञानवान भी अपनी प्रकृति के अनुसार चेष्टा करता है। इसीलिये सिद्ध योगी लोग अपने शिष्यों पर शक्ति पात करके उन्हें हिमालय में ही बैठा लेते हैं उन्हें फिर संसार में आने नहीं देते। संसार में रहेंगे तो वर–शाप के झमेले में पड़ जायेंगे और फिर पतन हो जायेगा। दूसरे शिष्य वे होते हैं जो दुनियाँ में रहते हुये गुरुदेव के पूर्ण नियन्त्रण में रह लेते हैं। गुरुदेव उन्हें यम–नियम का पालन कराते हैं। गुरुदेव के थपेड़े खाकर वे अपनी वृत्ति को इतना शुद्ध बना लेते हैं कि उन्हें क्रोध आता ही नहीं। ऐसे साधक योगी के विषय में देखने वाले कहा करते हैं– '**चण्डालः किमयम् द्विजतिरथवा शूद्रो किं तापसः**'। कोई कहता है यह चाण्डाल है कोई कहता है तपस्वी है। लोग अपनी–अपनी मति से अन्दाज लगाते हैं। किन्तु उस पर किसी का प्रभाव नहीं पड़ता है। वह न किसी के वचन पर प्रसन्न होते हैं और न ही क्रुद्ध होते हैं। इस प्रसंग में मुझे एक घटना याद आई एक बार श्री प्रभुजी ब्र. गोपालानन्द जी पर खुश हुये। कहने लगे। गुरू बाजार में चला जा वहाँ एक नंगा साधु है देख आ। ब्र. जी उसके पास गये और उसे देखा। उसके नाक मुंह से मल बह रहा था। अपने उपस्थेन्द्रिय को पकड़े हुये पेशाब करता हुआ सा चल रहा था उसका नाम रामू था। ब्र. जी उसे देखकर प्रभु जी के पास आ गये। प्रभु जी कहने लगे। देख आये उसे ? वे कहने लगे। 'हाँ प्रभु जी देख आया वह तो बड़ी बुरी हालत में है'। श्री प्रभु जी कहने लगे क्या तुम्हें भी रामू की तरह बना दें। ब्र. गोपालानन्द जी कहने लगे–प्रभु जी वह तो बिल्कुल पागल है आप मुझे उस की तरह न बनायें। श्री प्रभु जी ने ब्र. गोपालानन्द जी को फिर भेजा। अच्छा अब तुम चौरस्ती अटारी चले जाओ वहाँ भी एक साधु है उसे देख आओ। ब्र. गोपालानन्द जी ने वहाँ जाकर उसे देखा। मल मूत्र की गली में पड़ा हुआ गन्द से लिबड़ा हुआ था। देखा भी नहीं जा रहा था। वे वापिस आ गये। श्री प्रभु जी ने कहा– देख आये? क्या तुम्हें भी लल्लू की तरह बना दें ? गोपालानन्द जी ने उन्हें बाहरी दृष्टि से देखा था

इसलिये कहने लगे– नहीं प्रभु जी। मुझे आप ऐसा न बनावें। श्री प्रभु जी ने गोपालानन्द जी से कहा–अब तू ध्यान में बैठकर इनकी स्थिति देख। ब्र. गोपालानन्द जी ने ध्यान में देखा कि वे दोनों अखंड मण्डलाकार तेज में झिलमिल रहे थे। बहुत ऊँची स्थिति थी उन दोनों की। कहने का तात्पर्य यह है कि जो योगी वृत्ति सारूप्य से ऊपर उठ जाता है तो उसके लिये **शुनि चैव श्वपाके च पण्डितः समदर्शनः** की बात चरितार्थ हो जाती है। चाहे वह मलमूत्र में पड़ा रहे या अन्य किसी स्थिति में उनकी आत्मिक स्थिति बनी रहती है। इसलिये जिन शिष्यों को सद्गुरु शक्तिपात कर लेते हैं उन्हें फिर हिमालय से नीचे नहीं आने देते। उपाय प्रत्यय वाले योगी जो गुरुदेव के थपेड़े खाते हुये उनके नियन्त्रण में रह लेते हैं। वे गुरु कृपा से संसार के विघ्न बाधाओं से आहत नहीं होते। वे न किसी को वर देते हैं और न किसी को शाप देते हैं। इस प्रकार के योगियों के लिये योगदर्शन में महर्षि पतञ्जलि जी ने एक बात का संकेत दिया है–

'मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणाम् सुखदुःखपुण्यापुण्य विषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्। अर्थात् योगी को चाहिये कि वह सुखी व्यक्ति से मैत्री भाव रखे। दुःखी व्यक्ति के प्रति करुणा भाव रखे। पुण्यात्माओं को देखकर प्रसन्न रहे और पापी को देखकर उपेक्षा करे।

जो गुरुदेव के नियन्त्रण में रहकर अपनी कठोर वृत्तियों पर अधिकार पा लेता है वह पतन से परे हो जाता है। मैत्री आदि भाव उस योगी के सवभाव में आ जाते हैं। इसलिये गुरुदव के नियन्त्रण में रहकर साधक को चाहिये कि अपनी वृत्तियों पर अधिकार करे और उत्तरोत्तर साधना में बढ़ता चला जाये। तभी वह योग के उच्चतम शिखर पर पहुँच सकता है।

यस्तूदारचमत्कारः सदाचारविहारवान्।
स निर्याति जगन्मोहान्मृगेन्द्रः पञ्जरादिव।।
व्यवहारसहस्त्राणि यान्युपायान्ति यान्ति च।
यथाशास्त्रं विहर्तव्यं तेषु व्यक्त्वा सुखासुखे।।
यथाशास्त्रमनुच्छिन्नां मर्यादां स्वामनुज्झतः।
उपतिष्ठन्ति सर्वाणि रत्नान्यम्बुनिधाविव।।

(योगवशिष्ट ६/२, ३०,३१)

जो पुरुष उदार-स्वभाव तथा सत्कर्म के सम्पादन में कुशल है, सदाचार ही जिसका विहार है, वह जगत के मोहपाश से वैसे ही निकल जाता है, जैसे पिंजरे से सिंह। संसार में आने-जाने वाले सहस्त्रों व्यवहार हैं। उनमें सुख और दुःख-बुद्धि का त्याग करके शास्त्रानुकूल आचरण करना चाहिये। शास्त्र के अनुकूल और कभी उच्छिन्न न होने वाली अपनी मर्यादा का जो त्याग नहीं करता, उस पुरुष को समस्त अभीष्ट वस्तुएँ वैसे ही प्राप्त हो जाती हैं, जैसे सागर में गोता लगाने वाले को रत्नों का समूह।

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः।।

योग योगेश्वर अनन्त श्री विभूषित चन्द्रमोहन जी महाराज

योगेश्वर सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का 105 वाँ पावन प्राकट्य दिवस

– योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

कभी-कभी धराधाम पर भगवान् से 'तद्भाव' युक्त महापुरुष अवतरण करते हैं तथा भगवान् के संस्कारी जीवों का कल्याण करने के लिए योग के दिव्य ज्ञान का उपदेश कर उन्हें साधना के पथ पर लगाकर मुक्ति का अधिकारी बना देते हैं। ऐसे ही एक महापुरुष हरियाणा प्रान्त में एक छोटे से गाँव में अवतरित हुए हैं जो युगों-युगों तक भक्तों के लिए स्मरणीय रहेंगे। गांव अलुपुर में इनका प्रादुर्भाव हुआ। अपने भावी पिता को अपने आगमन का संकेत दे दिया था और कहा था कि मेरी माँ को दिव्य रसायनों का सेवन कराना। अपने ध्यानयोग के बल से पूर्व जन्म का वृत्तान्त जान लिया था। नेपाल में 'गण्डकी नदी पर स्थित 'त्रिवेणीधाम'' में रहकर बहुत समय तक समाधि का अभ्यास करते हुए शरीर के अत्यन्त वृद्ध होने पर अपनी इच्छा से उसका त्याग करके इस जन्म के पिता पूज्य पं. देवीराम जी के यहाँ नूतन शरीर धारण किया। शैशवावस्था से ही अखिलात्मा भगवान श्री कृष्ण चन्द्र का साक्षात्कार बना रहता था। नाना प्रकार के बाल-लीलाओं को करते हुए अत्यन्त आल्हादित रहा करते थे। इनके सौम्य व आनन्ददायिनी रूप को देखकर 'पिताश्री' ने इनका नाम 'चन्द्रदत्त' रखा। ये अपने भक्तों को शीतलता व शान्ति प्रदान करने वाले महापुरुष के रूप में विख्यात हुए।

पिता ने इन्हें बाल्यकाल से ही ऊँचे संस्कार दिये। पिताजी स्वयं अत्यन्त धार्मिक विचारों वाले तथा तपस्वी महापुरुष थे। इन्हें वे 4-5 वर्ष की अवस्था में ही गाँव के पास नहर पर ले जाकर स्नान कराते तथा अपने साथ ही गायत्री मंत्र के जाप से बिठा देते थे। प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था घर पर ही कर दी थी। तत्पश्चात् हरियाणा व पंजाब के कई विद्यालयों में अध्ययन कराते रहे। अन्त में ऊँची शिक्षा के लिए इन्हें पंजाब में लाहौर में आचार्य विश्वबन्धु जी के संस्कृत महाविद्यालय में प्रवेश दिलाया। आचार्य जी बड़े ही विद्वान तथा तपस्वी धर्मात्मा महापुरुष थे। यहाँ पर कई वर्षों तक संस्कृत का अध्ययन किया। किन्तु भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी इन्हें बार-बार आकर्षित करते रहे। अन्ततोगत्वा वैराग्य की लहरें उमड़ने लगीं। विद्यालय छोड़कर श्री वृन्दावन धाम आ गये और भगवान के दिव्य लीला स्थलों व मन्दिरों के दर्शन करते

हुए आनन्दित होते रहे। भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी की कृपा से अल्पायु में ही योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के दर्शन प्राप्त किये और योग मार्ग में प्रवेश कर समाधि में लीन रहने लगे। ऋषिकेश आश्रम में रहते हुए वैराग्य के भाव दृढ़ होने लगे। अब आप प्रवृत्ति मार्ग से निवृत्ति मार्ग में आरूढ़ होने का विचार बनाने लगे। किन्तु अन्तर्यामी श्री प्रभुजी ने इन्हें ठीक मौके पर जाने से रोक दिया। एक पत्र में उन्होंने लिखा था 'चिरंजीव! हम बस्तियों में रहकर योग विद्या का प्रचार कर रहे हैं और तुम जंगलों में जाने की तैयारी कर रहे हो। यह तुम्हारे लिये उचित नहीं है। अभी हमने तुमसे बहुत काम लेना है। अत: हिमालय की ओर जाने का विचार त्याग कर हमारी आज्ञाओं का पालन करो। अपने गुरुदेव की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए वनों में जाने का विचार त्याग दिया।

श्री प्रभुजी की आज्ञा से योग पिपासुओं को 'शक्तिपात दीक्षा प्रणाली' से दीक्षा देने लगे। साधकों में अद्‌भुत रहस्यमयी क्रियायें स्वत: होने लगीं। ध्यान की ऊँची-ऊँची स्थितियाँ प्राप्त होने लगी। गुरुदेव शिष्यों का एक बड़ा झुण्ड इकट्ठे करने में रुचि नहीं रखते थे न ही प्रचार के माध्यमों से ख्याति चाहते थे। योग जिज्ञासु के धैर्य एवं श्रद्धा को परख कर कई वर्षो के बाद योग दीक्षा प्रदान करते थे। वस्तुत: अच्छे संस्कार युक्त साधक ही योग में आगे बढ़ पाते हैं। जिनके अच्छे संस्कार नहीं हैं शक्तिपात के बावजूद भी उनका पतन देखा गया। ऊर्वरक भूमि में बीज खाद डालने पर ही उत्तम फसल हो सकती है। ऊसर भूमि में डाला गया बीज अंकुरित नहीं हो पाता। मन्द संस्कारी व्यक्ति कदाचित् गुरुचरणों तक पहुँच भी जाये तो वहाँ भी उसे माया के ही दर्शन होते हैं। फलत: श्रद्धा बन नहीं पाती। उत्कृष्ट संस्कारवान व्यक्ति को गुरुदेव स्वत: ही खींच लेते हैं अपनी व्यापक सत्ता का परिचय देते हुए स्वप्न या ध्यान में दर्शन दे जाते हैं। साधक दिव्य दर्शन पाकर आनन्दित रहने लगता है धीरे-धीरे प्रभु का चरण शरण मिल जाता है। सद्‌गुरु चरण मिल जाने पर साधक आत्म विभोर हो उठता है जन्मों से उसे जिस वस्तु की तलाश थी वह उसे मिल जाता है। उसे अब सब कुछ मिल गया। 'भुक्ति-मुक्ति प्रदातारम् तस्मै श्री गुरवे नम:' गुरुदेव तो सांसारिक भोग्य वस्तु भी प्रदान करते हैं उसे मुक्ति भी दे देते हैं। गुरुदेव जब 18-20 वर्ष के ही थे उस समय ही आपको चित्त निर्माण आदि सिद्धि स्वायत्त थी अगढ़धत्ता के प्रसंग में आपने स्वयं ही इस तथ्य का उद्‌घाटन किया है। श्री प्रभुजी ने गुरुदेव से एक बार कहा था - तुम्हें श्री वृन्दावन धाम के वास के समय ही 'प्रभु' ने सारी शक्तियाँ दे दी हैं अत: तुम योग विद्या के प्रचार में लग जाओ।

सन् 1938 में श्री महाप्रभु जी के तिरोधान के बाद श्री गुरुदेव जी श्री सिद्धगुफा सवांई धाम के दर्शनों के लिए आये। नितान्त एकान्त व सुरम्य स्थान को देखकर आनन्दित हो गये।

धाम के दर्शनों के लिए आये। नितान्त एकान्त व सुरम्य स्थान को देखकर आनन्दित हो गये। स्थान की दिव्य छटा को देखकर आपने अपने योग प्रचार के कार्य के लिए इसे ही कार्यक्षेत्र चुन लिया। साधकों को शक्तिपात दीक्षा प्रदान की। रोगी व्यक्तियों को अपने नेति धौति आदि षटकर्म क्रियाओं का अभ्यास कराया एवं जीवन तत्व साधन की क्रियाओं को कराना प्रारम्भ किया। इन क्रियाओं का अद्‌भुत लाभ मिलने लगा। सभी बीमार जो असाध्य से असाध्य भी आते गुरुदेव के संकल्प से स्वस्थ होकर ही घर लौटते थे।

ध्यान योग की दीक्षा संस्कारी साधक स्वयं चमत्कारिक तरीके से आकर लेते। इनमें रघुनन्दन प्रसाद टाट वाला का नाम उल्लेखनीय है। भगवान् शिव की आज्ञा से वे गुरुदेव से योग दीक्षा लेकर साधना में लगे। तीव्र तपश्चर्या एवं गुरु भक्ति के फलस्वरूप वाक्‌सिद्धि एवं दिव्य दृष्टि जैसी सिद्धियाँ प्रकाशित होने लगी। इसी प्रकार से जम्मू कश्मीर का संसार सिहँ दिव्य दृष्टि सम्पन्न योगी हुए हैं। कई गुमनाम साधक कन्दराओं में साधना रत हैं। पाकिस्तान की सीमा पर गुलमर्ग-खिलमर्ग की तरफ गुरुदेव का एक शिष्य साधु रहा करता था। एक बार वाराणसी के गुरुभाई प्रमोद एडवोकेट और विन्ध्यवासिनी भाई उस क्षेत्र में घूमने गये तो अचानक वह योगी इनके सामने आकर 'जयगुरुदेव' कहने लगा। यह आश्चर्य में पड़ गये। इस नितान्त जंगल में यह कौन हो सकता है। उस साधु ने कहा - मैं भी योगिराज चन्द्रमोहन जी महाराज का शिष्य हूँ। उनकी आज्ञा से साधना में लगा हुआ हूँ। वे मेरी हर प्रकार से रक्षा करते रहते हैं। उस साधु ने गद्‌गद् कण्ठ से गुरुदेव की शक्ति व महिमा का गुणगान किया।

आपने कई प्रान्तों में योग आश्रमों की स्थापना की। वहाँ पर निःशुल्क योग की क्रियायें, आसन, प्राणायाम आदि सिखाये जाते हैं और बीमार व्यक्ति साधन से स्वस्थ होकर योग की ओर प्रवृत्त हो जाते हैं। योग विद्या को गुरुदेव ने कभी बेचा नहीं अर्थात् कभी फीस नहीं ली गई। नेति आदि भी निःशुल्क दिये व सिखाये जाते थे। आज भी वही परम्परा चल रही है। 'सन्तु सन्तु निरामया:' की भावना को गुरुदेव ने हमेशा सामने रखा है।

अपने देश में कई राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन हुए हैं उनमें कई बार इनकी अध्यक्षता रही है। 1986 में भी विश्व योग सम्मेलन में आप साधना-सत्र के अध्यक्ष थे। आप श्रोत्रीय ब्रह्मनिष्ठ योगी रहे हैं यही कारण है कि सैद्धान्तिक और अन्तरंग योग के ज्ञाता होने के कारण आपकी छवि व व्यक्तित्व अन्यों से विशिष्ट होती थी। योग के दुरूह सिद्धान्तों को आप बहुत ही सरल सुबोध भाषा में बता कर योग सिद्धान्तों को साधकों में कूट-कूट कर भर देते थे। योग के सिद्धान्तों को सरल ढंग से समझाने के लिए आपने 'योग सिद्धान्त' नामक यौगिक पुस्तक के दो खण्ड प्रकाशित कराकर योग साधकों का बड़ा ही उपकार किया है। इसके अतिरिक्त

के दो खण्ड प्रकाशित कराकर योग साधकों का बड़ा ही उपकार किया है। इसके अतिरिक्त बीसियों पुस्तकें आप द्वारा रचित हैं। धन संग्रह का आपका कभी उद्देश्य नहीं रहा। चन्दा या फीस के आप हमेशा विरोधी थे। आप कहा करते थे – यहाँ आश्रम में जो कुछ भी है तुम लोगों का 'तुम लोगों के लिए ही है। हमारा इसमें कुछ नहीं है। हम तो निमित्त मात्र हैं श्री प्रभुजी ही करण कारण हैं।' आपका सरल व आडम्बर रहित जीवन था।

इस प्रकार से गुरुदेव निःस्पृह भाव से ही कर्म करते थे। अपने शिष्यों के लिये आप कल्पतरू हैं, उनके चरण तल में बैठकर जो भी कामना की जाती है सभी पूरी होती है। 'प्रणमामि गुरुम् गुरु कल्पतरूम्' कल्प वृक्ष रूप गुरुदेव को हम सदा ही नमस्कार करते हैं। आपके चिन्तन मात्र से जीवन की कठिनाइयाँ व दुःख दूर हो जाते हैं। आप अपने शिष्यों के अज्ञानग्रन्थि का भेदन करने वाले हैं इसलिए ही संसार में आप सर्ववन्धद्य होते हैं।

योग शब्द शक्ति का पर्याय है। जो अपने जीवन को योगमय बना लेता है उसी का जीवन दिव्य बन जाता है। तन, मन व बुद्धि की शुद्धि योग साधना से हुआ करती है। आत्म-साक्षात्कार का प्रमुख साधन योग को ही माना गया है। आज गुरुदेव के लाखों शिष्य/प्रशिष्य योग साधना में आरूढ़ हैं और उज्जवल व दिव्य जीवन की ओर अग्रसर हैं।

करुणामूर्ति श्री गुरुदेव का 105 वाँ प्राकट्य दिवस उनके सभी आश्रमों में विजयादशमी के दिन बड़े ही धूम धाम से मनाया जा रहा है। इस परम पावन वेला पर गुरुदेव के पावन चरणों में सभी शिष्यों का कोटि-कोटि नमन है।

परमात्मा की उपलब्धि

तिलेषु तैलं दूधनीव सर्पि-
राप: स्रोत: स्वरणीषु चाग्नि:
एवमात्माऽऽत्मनि गृह्यतेऽसौ
सत्यनैनं तपसा योऽनुपश्यति।

अर्थ- तिल में तेल, दही में घी, स्रोतें में जल और अरणियों में अग्नि जिस प्रकार छिपे रहते हैं, उसी प्रकार वह परमात्म अपने हृदय में छिपा हुआ है। जो कोई साधक उसको सत्य के द्वारा संयम के द्वारा, तप के द्वारा देखता रहता है यानि चिन्तन करता रहता है उसे वह परमात्मा अवश्य ग्राह्य हो जाता है। अर्थात् ऐसे संयमी योगी साधक को परमात्मा अवश्य प्रत्यक्ष हो जाते हैं।

योग की महिमा

– डॉ. ऋषिराम शर्मा, गणित विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

योग की महिमा का यथार्थ ज्ञान तो सम्प्रज्ञात समाधि की चतुर्थ भूमिका अस्मितानुगत समाधि में स्वतः प्राप्त केवल यथार्थ ग्रहण करने वाली ऋतम्भरा प्रज्ञा ही करा सकती है। तथापि मैं ऋतम्भराप्रज्ञागर्भित आप्त वाक्यों का अवलम्ब लेकर जिज्ञासुओं के समक्ष परम श्रेयात्मक योग की महिमा का गुणगान करना चाहता हूँ। इस लेख से मेरा एक उद्देश्य है कि जैसे किसी अत्यन्त कष्टदायी पीड़ा से पीड़ित रोगी को उसके कष्ट से मुक्ति दिलाने वाली औषधि को पा जाने की बेचैनी रहती है और वह तब तक निरन्तर डाक्टरों के पास दौड़ता रहता है जब तक कि उसे किसी औषधि पर विश्वास नहीं जम जाता है। ठीक वैसे ही मैं भी अत्यन्त कष्टदायी भवताप से पीड़ित अपने लिए और अपने भाई और बहनों के लिए किसी विश्वसनीय औषधि की आवश्यकता का अनुभव कर रहा हूँ जिसके पान से भवताप से मुक्ति मिल जाये। गरुण पुराण में तदर्थ औषधि का उल्लेख किया है कि –

" भवतापेन हि तप्तानां योगो हि परमौषधम् "

अर्थात् भवताप से तप्त जीवों के लिए योग ही परम औषधि है। बस मैं इस औषधि पर अपना और आप सब का विश्वास जमाने के उद्देश्य से कुछ लिखना चाहता हूँ।

संसार का प्रत्येक प्राणी जन्ममरणजराव्याधिजनित यातनाओं तथा अनेकानेक मानसिक यातनाओं से असह्य दुःख भोग रहा है। वह दिनरात इन यातनाओं से मुक्ति पाने का प्रयत्न करता रहता है किन्तु उलझता ही जाता है। महर्षि वशिष्ठ जी ने साँसारिक जीवों के कल्याण हेतु भगवान राम को निमित्त बनाकर उपदेश किया कि –

दुःसहा राम संसार विषवेगविषूचिका
योगगारुडमन्त्रेण पावनेनोपशाम्यति।।

अर्थात् हे राम ! भवताप रूपी विषविषूचिका का वेग दुःसह है। यह केवल पवित्र योग रूपी गरुणमन्त्र के उपचार से शान्त होती है।

सांसारिक दुःख तीन प्रकार का होता है। आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक। योगहीन अशक्त जीव अपने विशुद्ध आनन्दमय स्वरूप को न पहचान कर " मैं देह हूँ " इस भाव में बँधकर दुःखी होता है। कफ, पित्त और वात आदि के विकार से उत्पन्न शारीरिक पीड़ा से होने वाले दुःख और काम क्रोधादि से जनित मानसिक यातनाओं को आध्यात्मिक दुःख कहते हैं। अति शीत, अति उष्ण, अति वात, अति वृष्टि और विद्युत्पात आदिक दैवी शक्तियों से जन्य दुःख को आधिदैविक कहते हैं। सिंह, वृश्चिक तथा सर्पादि प्राणियों से जन्य दुःख आधिभौतिक कहलाते हैं।

वस्तुतः यह संसार एक भयंकर कंटकाकीर्ण अरण्य के समान है जिसमें भटकता हुआ जिज्ञासु जीव मुक्तिपथ की खोज में चिन्तातुर है। उस पुण्यवान जिज्ञासु के लिए पूर्वाचार्यों ने आदेश दिया है कि –

" जनननाशजरोग्रवनेचरम्

त्रिविधतापकुकंटकसंकुलम्

उपरमेत तृषोग्रदवानलम्

जगदरण्यमवेक्ष्य सुधीरधीः। "

अर्थात् जैसे भयंकर जंगल में शक्तिहीन जन्तुओं को शक्तिशाली सिंहादि हिंसक पशु खा जाते हैं वैसे ही शक्तिहीन जीवों को इस जगदरण्य में जन्म, मृत्यु और जरा ही भक्षण कर जाती हैं, क्योंकि **" नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः "** जैसे ऋजुमार्ग से हटकर भटकते हुए पुरुष को शरीर के अवयवों में चुभने वाले तीक्ष्ण काँटे विदीर्ण कर देते हैं वैसे ही इस संसार रूपी जंगल के योगाभ्यास रूपी ऋजुमार्ग से हटकर भटकते हुए जीव को आध्यात्मिक, आधिदैविक और आदिभौतिक ताप रूपी कंटक विदीर्ण कर देते हैं। जैसे जंगल में बाँसों के परस्पर संघर्षण से उत्पन्न दावानल जंगल के वृक्षों और जंगली जन्तुओं को जला डालती है वैसे ही इस संसार रूपी जंगल में विषय–वासनाओं और इन्द्रियों के संघर्षण से उत्पन्न तृष्णा रूपी दावानल सांसारिक प्राणियों को जला डालती है। अतएव इस प्रकार के दुःखदायी संसार रूपी जंगल को विवेक दृष्टि से देखकर मुमुक्षु पुरुष को योग–साधन रूपी ऋजुमार्ग प्राप्त करने के लिए वैराग्य का आश्रय लेना चाहिए, क्योंकि

" इहामुत्र विरक्तस्य संसारस्य प्रजिहासतः

जिज्ञासोरेव कस्यापि योगेस्मिनधिकारिता।। "

अर्थात् इस लोक और परलोक के विषय भोगों से विरक्त और इस दुखदायी संसार से मुक्ति चाहने वाले मुमुक्षु पुरुष का ही परमश्रेयात्मक योग में अधिकार है।

अब शंका होती है कि योग से हमारे दुःखों का अन्त कैसे होगा तथा योगाभ्यास से हमें क्या प्राप्ति होगी ? इस शंका का निवारण जगदात्मा भगवान कृष्ण अपने मुखारविन्द से करते हैं कि –

" सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्

वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्वतः।।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः

यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते।।

तं विद्यात् दुःखसंयोगं योगसंज्ञितम्

सः निश्चयेन योक्तव्यो योगो निर्विण्णचेतसा।। "

अर्थात् उसको तुम योग के नाम से जानो जिसमें सर्व दुःखों का अभाव हो जाता है, जिसमें स्थित हुआ पुरुष अवर्णनीय अपार सुख को पाकर फिर कभी अपनी आनन्दमय स्वरूपस्थिति से विचलित नहीं होता, जिसमें स्थित हुआ पुरुष महान् साँसारिक दुःखों से भी विचलित नहीं होता है,

क्योंकि उसे वह अद्‌भुत लाभ मिल जाता है जिससे अधिक फिर कुछ भी पाना शेष नहीं रहता है। ऐसे परमश्रेयात्मक योग का निश्चयात्मक एवं निर्द्वन्द्व चित्त से अभ्यास करना चाहिए। अब शंका होती है कि योग की शरण में आने पर ही, भव–बन्धन से मुक्ति मिल जाती है तो श्रुतियों से विरोध हो जायगा, क्योंकि श्वेताश्वतर उनिषद् में प्रतिपादित है कि

" तमेव विदित्वातिमृत्युमति नान्यः
पंथा विद्यतेऽयनाय। "

अर्थात् ब्रह्मज्ञान से ही जन्ममरण रूप भवबंधन से मुक्ति मिलती है। मोक्ष–प्राप्ति का इसके अतिरिक्त अन्य मार्ग नहीं हैं।

स्मृतियों में भी लेख मिलता है कि –

" ज्ञानादेव तु कैवल्य प्राप्यते येन मुच्यते "

अर्थात् ज्ञान से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है जिससे जीव भव–बन्धन से छूट जाता है।

भगवान् शंकराचार्य जी ने भी इसी की पुष्टि की है कि

" नान्योस्ति पंथा भगबन्धमुक्तेर्विना स्वतत्वायगमं मुमुक्षोः "

अर्थात् मुमुक्षु के लिए तत्वज्ञान के अतिरिक्त भव–बन्धन से मुक्ति पाने का कोई दूसरा मार्ग नहीं है। भगवान कृष्ण ने भी अपने मुखारविन्द से इसे स्वीकार किया है कि –

" सर्व कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते "

अर्थात् ज्ञान को पाकर जीव कृतकृत्य हो जाता है। किन्तु इसमें एक विशेष रहस्य और भी है कि –

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विंदति।।

अर्थात् निःसन्देह ज्ञान के समान पवित्र कोई वस्तु नहीं है किन्तु इस ज्ञान का योग–सिद्धि होने पर ही आत्मा में स्वयं प्रादुर्भाव होता है।

वस्तुतः माया के आवरण का क्षय हो जाना ही ज्ञान है, किन्तु बिना योग–सिद्धि के माया का अविद्याजनित आवरण क्षय होता नहीं है। एक बार लोक–कल्याणार्थ भगवती पार्वतीजी ने भगवान सदाशिव जी से भी यही शंका की थी कि

ज्ञानदेव हि मोक्षं च वदन्ति ज्ञानिनः सदा।
न कथं सिद्धयोगेन योगो किं मोक्षदो भवेत्।।

अर्थात् जब ज्ञानियों का कथन है कि केवल ज्ञान से मोक्ष मिलती है, अन्य साधन से नहीं तो फिर सिद्धयोग से क्या प्रयोजन है और योग मोक्षदाता कैसे माना जाय। इस शंका का समाधान स्वयं भगवान सदाशिव जी करते हैं कि

ज्ञानेनैव हि मोक्षं च तेषाँ वाक्यं तु नान्यथा
सर्वे वदन्ति खगेन जयो भवति तर्हि किम्

बिना युद्धेन वीर्येण कथं जयमाप्नुयात्
तथा योगेन रहितं ज्ञानं मोक्षाय न भवेत्
ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा धर्मज्ञोऽपि जितेन्द्रियः
बिना योगेन देवोऽपि न मोक्षं लभते प्रिये।।

अर्थात् यह तो सत्य है कि ज्ञान से ही मोक्ष मिलती है। सभी मुख से कहते हैं कि खड्ग से युद्ध में विजय मिलती है किन्तु क्या कभी युद्ध और वीर पुरुष के बिना विजयश्री मिल सकती है अर्थात् नहीं। इसी प्रकार योग से रहित ज्ञान मोक्ष का दाता नहीं हो सकता। कोई चाहें कितना भी श्रोत्रिय ब्रह्मज्ञानी हो, धर्म का ज्ञाता हो, विरक्त हो, विजितेन्द्रिय हो अथवा चाहें देवता हो, वह भी योग के बिना मोक्ष नहीं पा सकता।

जब तक योग साधनों द्वारा चित्तवृत्तियों का पूर्ण निरोध नहीं हो जाता तब तक परास्वरूपस्थिति नहीं प्राप्त होती। जैसे औषधि का बिना पान किये केवल नामोच्चारण से व्याधि दूर नहीं होती इसी प्रकार योग द्वारा अपरोक्ष अनुभूतियाँ किए बिना केवल ब्रह्मज्ञान के श्रवणमात्र से मोक्ष नहीं मिलती। यदि ब्रह्मज्ञान से ही मोक्ष मिल जाती होती तो दैत्यों के पति विरोचन को तो स्वयं ब्रह्मा जी ने ब्रह्मज्ञान दिया था अतः उसकी मोक्ष हो जानी चाहिए थी किन्तु नहीं हुई। अतः यही निश्चय होता है कि

"नोपदेशश्रवणेऽपि कृतकृत्यता
परामर्षाहते विरोचनवत्"

अर्थात् विरोचन की तरह केवल ब्रह्मज्ञान के श्रवणमात्र से कृतकृत्यता नहीं मिलती।

श्रुतियों ने भी यही निष्कर्ष निकाला कि

"अथ तद्दर्शनाभ्युपायो योगः। अध्यात्मयोगाधि
गमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति।"

अर्थात् ब्रह्मसाक्षात्कार का उपाय योग है। अध्यात्मयोग की सिद्धि से ही धीर पुरुष अपने स्वरूप को जानकर हर्षशोक से मुक्त हो जाता है। स्कन्ध पुराण में योग की श्रेष्ठता का निरूपण इस प्रकार किया है कि

आत्मज्ञानेन मुक्तिः स्यात्तच्च योगाहते नहि।
स च योगश्चिरं कालमभ्यासादेव सिद्धयति।।

अर्थात् आत्म ज्ञान से मोक्ष मिलती है किन्तु वह भी योग के बिना नहीं। वह मोक्ष का हेतु योग चिर काल के अभ्यास के अनन्तर ही सिद्ध होता है।

मोक्ष में योग की अपेक्षा का कारण यह है कि जीव जन्मजन्मान्तरों से अविद्या के आवरण में देहबुद्धि से ही व्यवहार करता आया है। योगाभ्यास के बिना वह देह से अलग होकर अपनी चिद्रूपता का अनुभव कर नहीं सकता। वेदान्त के महावाक्यों आदि से जो ज्ञान की प्राप्ति होती है वह भी वृति जन्य ज्ञान रहता है क्योंकि जब तक योगाभ्यास द्वारा निरोध समाधि की प्राप्ति नहीं

होती तब तक जीव को वृत्तिसारूप्यता से ही अनुभव होते हैं। योगवासिष्ठ में महर्षि वसिष्ठ जी ने भगवान राम को इसका रहस्य समझाया है कि

जन्मान्तरचिराभ्यस्ता राम संसारसंस्थिति।
सा च चिराभ्यासयोगेन बिना न क्षीयते क्वचित्।।

अर्थात् हे राम! जीव में संसार–भावना जन्म–जन्मान्तरों से चली आ रही है अतएव दृढ़ हो गई है। वह चिरकाल तक योगाभ्यास किए बिना कभी क्षीण नहीं होती है।

यहाँ एक शंका होती है कि यदि योगाभ्यास के बिना अपरोक्ष ज्ञान की अनुभूति तथा कैवल्यमोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है तो पुराणों में राजा जनक, एवं ब्राह्मणों और तुलाधार वैश्य आदि को बिना योगाभ्यास मोक्ष कैसे मिल गयी। भगवान पतंजलि ने अपने योग दर्शन में योग–सिद्धि के दो मार्ग बताये हैं। एक तो " **भगवत्प्रत्ययः विदेहेप्रकृतिलयानाम्** " अर्थात् जिनकी पूर्वजन्मों में किए गये योगाभ्यास से तल्लीनता हो चुकी है उनको जन्म लेने पर स्वतः योगसिद्धि हो जाती है। दूसरों के लिए " **श्रद्धावीर्यस्मृतिप्रज्ञ पूर्वकमितरेषाम्** " अर्थात् श्रद्धा, ब्रह्मचर्य, ध्यान और समाधि के अभ्यास से योग–सिद्धि होती है। सो राजा जनक आदि को पूर्वजन्मकृत अनुष्ठानों और योगाभ्यास के फलस्वरूप उपरोक्त ज्ञान की प्राप्ति हुई। यह बात पुराणों में भी प्रतिपादित है कि

जैगीषव्यो यथा विप्रो यथा चैवासितादयः।
क्षत्रियाजनकाद्यास्तु तुलाधारारयो विशः
ऐते चान्ये च वहबो नीचयोनिगता अपि
ज्ञाननिष्ठाँ पराँ प्राप्ताः पूर्वाभ्यस्तस्वयोगतः।।

अर्थात् जैगीसव्य तथा असित इत्यादिक ब्राह्मण, जनकादि क्षत्रिय और तुलाधारादिक वैश्य तथा अन्य भी अनेक नीच योनि को प्राप्त हुए जीवों ने अपने पूर्वजन्मकृत योगाभ्यास के फलस्वरूप ही अपरोक्ष ज्ञान की प्राप्ति की।

अतएव मुमुक्षु को योग–साधना में लगना ही श्रेयस्कर है क्योंकि

" ज्ञानं वदन्तीह विमोक्षकारणं
तज्जायते नैव दिलोलचेतसि
लौल्यं न योगेन विना प्रशाम्यति
तस्मातदर्थ हि यतेत् साधकः।"

अर्थात् ज्ञान मोक्ष का हेतु तो है किन्तु मोक्ष–दाता ज्ञान की चंचल चित्त में उत्पत्ति ही सम्भव नहीं है क्योंकि चित्त की चंचलता योगाभ्यास के बिना नहीं शान्त होती। अतः मुमुक्षु को योग का ही साधक बनना चाहिए।

जगदात्मा भगवान कृष्ण ने भी गीता में योग सर्वश्रेष्ठता को अंगीकार किया है कि **जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते, " " सन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ", " तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ",** " योगी परं स्थानमुपैति चाद्याम्" इत्यादि।

योगाभ्यासी को जो गति प्राप्त होती है वह घोर तपस्या करने से, तीव्र स्वाध्याय करने से तथा बड़े–बड़े यज्ञ करने से भी नहीं प्राप्त होती। अत्रिसंहिता में इसकी पुष्टि की है कि

न च तीव्रेण तपसा न स्वाध्यायैर्न चेज्जयया।
गतिं गन्तुं द्विजनः शक्ताः योगात्सम्प्राप्नुवान्ति याम्।

योग क्या है और योगाभ्यास कैसे किया जाय यह तो सत्गुरुदेव भगवान की शरणागति में ही समझ में आता है। बिना गुरुकृपा के किसी का कल्याण नहीं होता। इस लेख का विषय तो यही है कि कल्याण के मार्गो में योग ही सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। अतएव सर्वभाव से मनोवांछित फल देने वाले योग रूपी कल्पवृक्ष की आराधना करनी चाहिए। अब हम योग रूपी कल्पवृक्ष का वर्णन करते हैं कि

हृद्भूवो निगमबोधसुमूलको द्वि–
स्कन्धः शड्व्रतलतुश्च यमादिपर्णः
ध्यानादिपुष्पललितश्च विमोक्षसस्यः
सर्वार्थदो जयति योगसुरद्रुमोऽयम्।।

अर्थात् योग मनोवांछित फल देने वाला कल्पवृक्ष है क्योंकि अन्य सभी परमात्मा की ओर ले जाने वाले साधन रूपी वृक्षों की अपेक्षा यह श्रेष्ठतर है। हृदय रूपी भूमि में इस की उत्पत्ति होती है भगवान पंतजलि ने कहा है कि चित्तवृत्तियों का निरोध हो जाने पर आत्मसाक्षात्कार हो जाता है। जैसे वृक्ष के विस्तार की हेतु उसकी जड़ें होती हैं वैसे ही इस योग रूपी कल्पवृक्ष का विस्तार ब्रह्मविन्दु उपनिषद, अमृतविन्दु उपनिषद्, ध्यानविन्दु उपनिषद्, योगतत्व, योगशिखादि उपनिषदों से, गीतका, रामायण, योगदर्शन आदि शास्त्रों से तथा गुरु वाक्यों से होता है। जैसे वृक्ष के फल–फूल और पत्तियों को सम्हालने के स्कन्ध होते है वैसे ही योग रूपी कल्पृक्ष के अभ्यास और वैराग्य रूपी दो स्कन्ध हैं। याज्ञवल्क्य संहिता में योग की प्रसिद्धि के लिए षड् साधन बताये हैं कि

उत्साहसात्धैर्यात् तत्वज्ञानाच्चानिश्चयात्।
जनसंगपरित्यागात् षड्भिर्योगः प्रसिद्धयति।।

अर्थात् उत्साह, साहस, धैर्य, तत्वधान, निश्चय तथा जनसंसर्ग से योग की प्रसिद्धि होती है। यह षडंग ही योग रूपी कल्पवृक्ष की लतायें हैं। **यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारादि बहिरंग** साधन इसके पत्ते हैं। धारणा ,ध्यान और समाधि रूप योग के अन्तरंग साधन योग रूपी कल्पवृक्ष के पुष्प हैं और असम्प्रज्ञात समाधि से उत्पन्न मोक्ष रूपी फल लगता है।

बस ऐसे योग रूपी कल्पवृक्ष को पाने के लिए जो श्रद्धालु जिज्ञासु प्रयत्न करेगें उनकी योगयोगीश्वर आनन्दकन्द महाप्रभु जी सब प्रकार से सहायता करेंगे।

श्री सद्‌गुरुदेव द्वारा प्राण रक्षा

– योगी विनोद कुमार, मं. नं. 56, नौलक्खा, आगरा

आनन्दकंद श्री महाप्रभु जी की असीम अनुकम्पा से मेरे द्वारा प्राप्त श्री सद्‌गुरु देव की अहैतुकी कृपा को वर्णन करने का प्रयास मात्र है।

मेरी और मेरे पुत्र की मोटर साईकिल से एक्सीडेंट में मृत्यु निश्चित थी। लेकिन उस संस्कार को मात्र खरोंचों में किस प्रकार निपटा दिया गया यह लेखबद्ध करता हूँ।

एक्सीडेंट शनिवार दिनांक 21–6–2014 को रात्रि में 9 बजे हुआ। उसके एक दिन पूर्व सन्ध्या आरती समय मेरे अन्तःकरण से आवाज आयी रक्षा करो प्रभुजी रक्षा करो मैंने कहा यह तो गुरुदेव की वाणी है और कोई भयंकर संकट आने वाला है। लेकिन सोच न सका क्या संकट है। लेकिन जब शनिवार को मैं रात्रि कालीन आरती कर स्नान कर नये कपड़े पहिन मोटर साईकल पर रात्रि को एक विवाह में जा रहा था। मेरा पुत्र आगे गाड़ी चला रहा था। रोड पर भारी ट्रैफिक था। जब हम आगरा कालेज के सामने से गुजर रहे थे। तभी एक मोटर साईकिल जिस पर दो लड़के सवार थे। नशे में धुत थे, आये और गाड़ी में पिछले पहिये से टक्कर मार दी। पीछे भारी ट्रैफिक था।

गाड़ी असन्तुलित होकर गिर पड़ी मैं और मेरा पुत्र गाड़ी के साथ काफी दूर तक घिसटे जिससे मेरे और पुत्र के कपड़े बुरी तरह फट गये।

पुत्र के और मेरे हाथ पैर घिस गये। पीछे से आने वाला ट्रैफिक गुरुदेव की अहैतुकी कृपा से वहीं जाम हो गया था।

अगर जाम न होता तो कोई भी गाड़ी हम दोनों के ऊपर से गुजर सकती थी, और हमारी मृत्यु निश्चित थी। किन्तु गुरुदेव की कृपा से हम बाल–बाल बच गये। मृत्यु के संस्कार को मात्र खुरसटों में निपटा दिया गया।

यह घटना इसलिये लिखी जा रही है कि गुरुदेव कितने भक्त वत्सल हैं। इसका अन्दाज लोगों को हो जावे। सद्‌गुरु देव की अहैतुकी कृपा सभी भाई–बहिनों को प्राप्त है। उनकी कृपा से सभी भक्तों का अनिष्ट कभी हो नहीं सकता। इस आशय के साथ लेख को विश्राम देता हूँ।

गोरखपुर में सिध्दगुफा सवांई आश्रम का-प्रतिनिधित्व

– प्रो. रुददत्त चतुर्वेदी, गोरखपुर

विश्वविख्यात गोरक्षपीठ गोरखनाथ मन्दिर गोरखपुर में ब्रह्मलीन महंतदिग्विजय नाथ की 45 वीं पुण्य तिथि के सप्तदिवसीय कार्यक्रम पर जहाँ देश के विभिन्न भागों से योगी और सन्त जनों ने सहभागिता की वहीं योगयोगश्वर प्रभु श्री रामलाल जी द्वारा स्थापित और योगिराज गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी द्वारा विस्तारित श्री सिद्ध गुफा सवांई एत्मादपुर (आगरा) का प्रतिनिधित्व आचार्य डॉ. दासलाल द्वारा किया गया।

दिनांक 10 सितम्बर 2014 को दिग्विजय नाथ स्मृति सभागार में 'योग एवं आध्यात्म' सम्मेलन के मुख्य वक्ता के रूप में डॉ. योगाचार्य दासलाल जी ने योग के विभिन्न आयामों पर चर्चा की। दैनिक हिन्दुस्तान में उनके प्रवचन का अंश इस प्रकार प्रकाशित हुआ– " योग के बिना देवता भी नही पा सकते हैं कैवल्य", योग भारत भूमि की धरोहर है। योग हमारा मन शक्तियों का पुंज है। योग विद्या अविनाशी है। योग साधना के बिना देवता भी परमपद या कैवल्य की प्राप्ति नही कर सकते है। यह बातें सिद्धगुफा सवांई से पधारे प्रसिद्ध योग साधक ब्रह्मचारी दासलाल ने कही। वे गोरख नाथ मन्दिर में चल रहे महन्त दिग्विजय नाथ की 45 वीं पुण्यतिथि समारोह में बुधवार को योग एवं आध्यात्म सम्मेलन विषय पर व्याख्यान दे रहे थे। उन्होंने बताया कि योग दर्शन भारतीय आध्यात्म संस्कृति की प्रमुख भावभूमि है। योग का आधार शरीर है। "इसी प्रकार की बातें " अमर उजाला कम्पेक्ट " में भी प्रकाशित हुई हैं। आचार्य जी ने प्राण और अपान की साधना का भी जिक्र किया है। जिस प्राण साधना से साधक के अन्दर अलौकिक शक्तियों की स्वतः ही जागृति हुआ करती है।

आचार्य डॉ. दासलाल जी ने गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के सानिध्य में 17–18 वर्षों तक रहकर योग सिद्धान्तों को समझा और आत्मसात् किया है। इस प्रकार से डॉ. दासलाल ने श्री सिद्धगुफा का उस स्थान पर प्रतिनिधित्व किया जहाँ गोरक्ष पीठ के उत्तराधिकारी सांसद योगी आदित्य नाथ, पूर्व सांसद डॉ. राम विलास वेदान्ती, पूर्व गृह राज्य मंत्री स्वामी चिन्मयानन्द, अयोध्या के दिगम्बर अखाड़ा के महन्त सुरेश दास, स्वामी गंगादास, प्रेमदास, शान्ति नाथ आदि देश के अन्य अनेक सन्तों को सुनने हजारों व्यक्ति प्रतिदिन आते थे।

ज्ञातव्य है कि अपने जीवन काल में परम पूज्य गुरुदेव योगिराज जी कई बार यहाँ पधारे थे तो पीठाधीश्वर महन्त अवैद्य नाथ जी ने भी सिद्धगुफा के दर्शन किये। आचार्य डॉ. दासलाल का प्रतिनिधित्व श्री गुरुदेव और सवांई आश्रम से जुड़े साधकों के लिये गौरव एवं प्रसन्नता की बात है।

परम पूज्य महन्त अवैद्य नाथ जी 12 सितम्बर को लम्बी बीमारी के बाद ब्रह्मलीन हो गये। यह सारे देश के लिये महान दुःख की बात है। यह साधु–समाज एवं योग जगत के लिये अपूरणीय क्षति है। आचार्य डॉ. दासलाल जी ने भी 13 सितम्बर को आकर महन्त जी के अन्तिम दर्शन किये और भाव भीनी श्रद्धान्जलि दी। वे गोरखपुर से चले गये थे किन्तु देहावसान का समाचार सुनकर पुनः वापिस गोरखपुर आये और शोक–सन्तप्त योगी आदित्य नाथ जी को भी ढाढ़स व सान्त्वना दी।

यस्तं वेद स वेदवित्

– पं. कृष्ण कुमार पाण्डेय, प्रवक्ता, गोरखपुर

आदि नारायण परमेश्वर वेद की प्रतिमूर्ति है। जीव उन्हें जानने के लिए विभिन्न आध्यात्मिक ग्रंथों का स्वाध्याय करता है। जो प्रयास करता है, वही उसे उसी की कृपा से जान लेता है। वह परमेश्वर कैसा है, कहाँ वास करता है ? यह स्वाध्याय से ज्ञात होता है। गीता ने उस ईश्वर के बारे में विस्तृत रूप से निरूपण किया है। अस्तु गीता का परायण जीवन को कृतार्थ कर देने वाला है। योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण के मुखारविन्द से निकले उपदेश अर्जुन के साथ ही सर्वसमाज को कृतकृत्य कर देने वाला है। सद्गुरु की कृपा सद्बुद्धि की प्रेरक रहेगी। अब उस परमेश्वर के रूप का स्मरण करें। जिसको वृक्ष के प्रतीक रूप से बताया है। परमात्मा अर्थात् मूलतत्व जो सृष्टि का सर्जक है। एक ऐसा वृक्ष जिसकी जड़ (मूल) उपर की ओर है। उसका विस्तार यह सृष्टि नीचे की ओर है । इस सृष्टि का विस्तारक ब्रह्मा है। जो उस मूल जड़ से जुड़े मुख्य शाखा वाला बताये गये हैं। जिसे ब्रह्मलोक कहा गया है। वह परम पुरुष अविनाशी है। उर्ध्वलोक से नीचे के सभी लोक एक समय सीमा के बाद उसी में विलीन हो जाते हैं। यहाँ तक कि ब्रह्मलोक भी उसी में विलीन हो जाता है। वृक्ष से संयुक्त मूल शाखा से भिन्न-भिन्न अनेक शाखाएँ, उसकी सुन्दर कोपलें पत्ते भी विभिन्न रूप में दिखायी देते हैं। इनका विस्तार और विकास कैसे होता है ? इसके विकास का कारक यज्ञ, तप, दान आदि क्रियाएँ हैं। इसी से इस संसार रुपी वृक्ष की शोभा बढ़ती है। शब्द, स्पर्श, रूप रस और गन्ध यह सूक्ष्म रूप है। यह संसार के जीवों में विद्यमान हैं। यही इस संसार की कोपलें है। मुख्य शाखा से अन्य अनेक योनियों का भी निर्माण हुआ है। जो सृष्टि विस्तार में सहायक हैं। इसी के विस्तार के कारण ही चौरासी लाख योनियों की संकल्पना हमारे शास्त्रों में बतायी गयी है। वास्तव में उस मूल से अलग होकर विस्तार पाने वाला संसार भगवान की योग माया से उत्पन्न होने वाला तथा क्षणभंगुर है। इन योनियों में श्रेष्ठयोनि मनुष्य की है शेष अन्य भोग योनियाँ हैं। यह श्रेष्ठ मनुष्य भी माया रूपी अज्ञानता में पड़ा हुआ समझ नहीं पाता है। कबीर ने सही कहा–

माया दीपक नर पतंग, भ्रमि-भ्रमि इवै पंडत।
कहै कबीर गुरु ज्ञान ते, एक आध उबरंत।।

अर्थात् उस मूलरूप परमेश्वर की माया दीपक के समान है तथा नर पतंगे के समान। जैसे पतंगा दीपक के चकाचौध से आकृष्ट होकर भ्रमवश मडराकर उसमें निमग्न होकर विनष्ट हो जाता है। वही स्थिति मनुष्य की है। यह मनुष्य भी इसी माया के आकर्षण से विषयों में फँसकर नष्ट हो जाता है। लेकिन कबीर ने कहा कि सब एक नहीं है कुछ गुरु के द्वारा प्रदत्त ज्ञान से उस माया से बच

जाते हैं। तुलसी दास जी ने भी कहा –

दीप शिखा सम जुवति तन मन जनि होसि पतंग

भजहि राम तजि काम मद कहि सदा सतसंग,

अर्थात् युवती स्त्रियों का शरीर दीपक की लौ के समान है, हे मन तू उसका पतिगा न बन। काम और मद छोड़कर श्री रामचन्द्र जी का भजन कर तथा सदा सत्संग किया कर।

संतों ने भी कलियुग के जीवों को चैतन्य करने के लिए बताया कि यह संसार नश्वर है। इसका चिन्तन न कर उस परमात्मा का चिन्तन करना ही वास्तव में यस्तं वेद स वेद विद् है।

योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण ने कहा –

न रूप मस्येह तथो पलभ्यते

नान्तो च चादिर्नच सम्प्रतिष्ठा।

अश्वत्थमेनं सुविरूढ़ मूलमसङ्ग

शस्त्रेण दृढ़ेन दित्वा।।

तात्पर्य कि दृढमूल वाले संसार रूपी वृक्ष को गुरु कृपा रूपी दृढ़ वैराग्य से ही काटा जा सकता है। योगदर्शन में भी अभ्यास और वैराग्य के द्वारा चित्त की चंचल वृत्तियों के निरोध (रोकना) तथा दर्घकाल तक निरन्तर सत्कार पूर्वक किसी क्रिया का साङ्गोपाङ्ग सेवन ही दृढ़ अवस्था को बना सकता है। योगदर्शन के समाधिपाद के सूत्र बारह एवं चौदह का चिन्तन कल्याणकारी होगा। अर्जुन को उपदेशित करते हुए भगवान श्रीकृष्ण ने कहा अर्जुन ऐसा दृढभूमि वाला ज्ञानी मेरे अविनाशी पद को प्राप्त करता है तथा मेरे धाम जाकर पुनः संसार में नही आता है। 'यद्गत्वा न निवर्तन्तेतद्धाम परममन।'

वह परमेश्वर इस संसार रूपी वृक्ष में सर्वत्र विद्यमान है। उस परमेश्वर की स्वयं की विद्यमानता को पूरी तरह सदैव अभ्यास करना चाहिए। यह भी अभ्यास की एक कड़ी बनेगी। उससे भी सांसारिक आकर्षण से व्यक्ति विमुख होगा। इन्द्रियों पर धीरे–धीरे नियंत्रण का योग सद्गुरु कृपा से बनता जायेगा। वह परमात्मा पृथ्वी में विभिन्न रसों के रूप में व्याप्त है। जिससे जीव के शरीर का पोषण होता है। कदाचित रोगी होने पर औषधि के रूप में विद्यमान वनस्पतियों के सेवन से व्यक्ति निरोग हो जाता है। संसार में रहते हुए व्यक्ति विभिन्न रूपों में विषयों का सेवन करता है –

श्रोत्रं चक्षु: स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च।

अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते।।

अर्थात् जीवात्मा श्रोत (कान) चक्षु, त्वचा, रसना घ्राण और मन का आश्रय लेकर विषयों का सेवन करता है। जब व्यक्ति की वृत्तियाँ बाह्यमुखी होती हैं तब वह सांसारिक आकर्षण में फँसता

है। लेकिन जैसे ही गुरु कृपा एवं उपदेशित मार्ग का अनुसरण करेगा उसकी वृत्तियां अन्तर्मुखी होगी। यही मूल सिद्धान्त है। जीव को अन्तर्मुखी वृत्ति वाला होकर ही साधन के सोपानों को क्रमशः पार करते हुए उस परमधाम को प्राप्त करता है। भगवान ने अर्जुन को उपदेशित करते हुए यह भी कहा कि

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मतः स्मृतिर्ज्ञानम पो हनंच।

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्त कृद्वेदवि देव चाहम्।।

अर्थात् हे अर्जुन– मैं सभी प्राणियों में अन्तर्यामी रूप से विद्यमान हूँ। इसी कारण स्मृति ज्ञान तथा बुद्धि में रहने वाले संशय तथा विपर्यय आदि दोषों को हटाता हूँ। जितने वेद हैं उसमें मैं ही विभिन्न रूप में जानने योग्य हूँ। वेदों का कर्तारूप एवं जानने वाला भी मैं ही हूँ। मेरे सिवाय इस सृष्टि में अन्य कुछ भी नहीं है। भगवान ने बड़ी दृढ़ता से इस रहस्य को बताया। किन्तु जगत का जीव अज्ञान से वेष्ठित कुछ समझ नहीं पाता है। वैसे जीवन में एक अनुभव व्यक्ति को अवश्य होता है, जैसे यदि जीव किसी बुरे कार्य को करने की चेष्टा करता है। वैसे ही अन्तर्मन से मात्र एक बार उस कार्य के प्रति सकारात्मक और नकारात्मक आवाज सुनाई पड़ता है। यदि व्यक्ति ऐसे में सचेष्ट नहीं होता तो वह एक कर्म संस्कार बना लेता है। जिससे जीव को उसे अच्छे एवं बुरे फल प्राप्त हो जाते हैं। संसारी जीव ईश्वर की विद्यमानता को जल्दी स्वीकारता ही नहीं है। उदाहरण स्वरूप योगेश्वर भगवान कृष्ण ग्वाल वालों को विभिन्न राक्षसों से सदैव रक्षा करते रहते थे, लेकिन वे उसको यह समझते थे कि कन्हइया हम सबसे बड़ा बहादुर है। इसलिए इसका साथ नहीं छोड़ना है। यही आस्था जीव को किसी भी प्रकार बनी रहनी चाहिए। ऐसी आस्था होने पर वह परमात्मा निश्चय ही जीव की रक्षा करता है। उसके योग क्षेम का वाहक परमात्मा सदैव बना रहता है। इसीलिए जीव को इस तत्व का ज्ञानी बनने का प्रयास करना चाहिए। साधक सद्गुरु का आश्रय ग्रहण कर तथा बताये गये उपदेश को ग्रहण कर उपरोक्त स्थिति प्राप्त की जा सकती है। गीता में अर्जुन के माध्यम से समस्त मानव जाति को उपदेशित किया–

यो मामेवम सम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत।।
इति गुह्यतमं शास्त्रांमिद मुक्तं मयान घ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृत कृत्यश्च।।

अर्थात् हे अर्जुन जो ज्ञानी पुरुष मुझे तत्त्व से पुरुषोत्तम जानता है। वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकार से ही निरन्तर मुझे ही भजता है। तात्पर्य इस दृश्य जगत में जहाँ भी शक्ति का रूप है। चाहे वह औषधियों में हो, शरीर में वैश्वानर रूप में, सूर्य में तेज हो, अथवा शक्ति का स्वरूप जहाँ भी जीव देखता है। वह सब मुझ परमेश्वर का ही रूप है। अर्जुन यह अत्यन्त रहस्य से युक्त एवं

गोपनीय शास्त्र है। जिसको कि मैंने तुझे बताया है। किन्तु इस रहस्य के तत्व को जो मनुष्य जानकर अमल में लायेगा, निश्चय ही कृतार्थ हो जायेगा। यदि मनुष्य की वृत्तियाँ स्वाभाविक रूप से ईश्वर भक्ति से ओत प्रोत होगी तो वह आत्म कल्याण कर लेगा। योगी भर्तृहरि की स्वानुभूति जीव को कल्याण हेतु प्रेरित करती है। उन्होंने बताया –

आदित्यस्य गता गतैर हरहः संक्षीयते जीवित।
व्यापारैर्वहु कार्यभार गुरुभिः कालो न विज्ञायते।।
दृष्टवा जन्म जरा विपत्ति मरणंत्रासश्चनो पत्पद्यते।
पीत्वा मोह मयी प्रमाद मदिरा मुन्मत्तभूतं जगत्।।

अर्थात् सूर्य प्रतिदिन उदय और अस्त हो रहा है। उससे हमारी आयु भी एक–एक दिन क्षीण हो रही है। सांसारिक प्रपंचों के चक्कर में ही सारा समय बीता जा रहा है। जन्म बुढ़ापा और मरण को देखकर भी जीव को कोई भय नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है मानो सारा संसार अज्ञान मयी प्रमाद रूपी मदिरा को पीकर उन्मत्त हो गया है।

भगवान योग योगेश्वर श्री कृष्ण ने अपने योग शास्त्र रूपी गीता में गोपनीय प्रभाव का विशद रूप से उपदेश अर्जुन के प्रति किया है। हम संसारी जीव भगवान के ही चिदांश हैं। हमें निश्चय ही उनका चिन्तन मनन करना चाहिए। जिससे मनुष्य जन्म की सार्थकता सिद्ध हो। पुनश्च मनुष्य जन्म ही प्राप्त हो।

गावः प्रतिष्ठा भूतानां गावः स्वस्त्ययनं महत्।
गावो भतं च भव्यं च गावः पुष्टिः सनातनी।।

अर्थात् गौएँ समस्त प्राणियों की प्रतिष्ठा (आधार) हैं और गौएँ ही उनके लिए महान् मंगल की निधि हैं। गौएँ ही भूत और भविष्य हैं। गौएँ ही सब समय पुष्टि का साधन हैं।

गौ–सेवा करिये और राष्ट्र को सुरक्षित एवं सम्पन्न बनाइये।

दर्शनाभिलाषा

– श्री भूपेन्द्र 'अंकुश', जलेसर

मिलेंगे कब मुझे दर्शन,
कन्हैया तेरी सूरत के।
मेरे प्यासे दोऊ लोचन,
कन्हैया तेरी सूरत के।।

जन्म–दर–जन्म का क्रन्दन,
श्रवण कर देवकी नन्दन,
मेरे नैना बनें स्यन्दन,
कन्हैया तेरी सूरत के ।। 1 ।।

तेरे घर–घर ठिकाने हैं,
मधुर मनहर फसाने हैं,
सूर मीरा दिवाने हैं,
कन्हैया तेरी सूरत के ।। 2 ।।

रूप का साँवरा बादल
जगाये प्यास को पल पल,
देखकर हैं सभी पागल,
कन्हैया तेरी सूरत के ।। 3 ।।

चाँद–सूरज–सितारे हैं,
नदी धारा किनारे हैं,
नजारे ही नजारे हैं,
कन्हैया तेरी सूरत के ।। 4 ।।

भस्मधारी भिखारी हैं,
तिलक धारी पुजारी हैं,
भक्त रसखान विहारी हैं,
कन्हैया तेरी सूरत के ।। 5 ।।

कुण्डलिनी-शक्ति का जागरण

– महा महोपाध्याय गोपी नाथ कविराज जी

प्रश्न : कुण्डलिनी एवं बिन्दु के बारे में आप बराबर चर्चा करते हैं जब कि इन दोनों विषयों के बारे में हमारी धारणा स्पष्ट नहीं है। कृपया आप इसे अच्छी तरह समझायें।

उत्तर : कुण्डलिनी–शक्ति इसी का नामान्तर बिन्दु है। इसे चिदाकाश कहा जाता है। यही परमेश्वर की महामायारूपी–शक्ति है। परमेश्वर अथवा परम शिव चित्स्वरूप। इनमें दो शक्तियाँ हैं– एक चिद्‌रूपी और दूसरी अचिद्‌रूपी। चिद्‌रूपी–शक्ति को चित्शक्ति कहा जाता है–यह परमेश्वर से अभिन्न है। इसका नाम स्वरूपशक्ति है। बिन्दुरूपी शक्ति भी परमेश्वर की शक्ति है, पर यह अचित्–शक्ति है। यह केवल माया की तरह मलिन नहीं है। बिन्दुशक्ति परिग्रह–शक्ति है। माया एवं महामाया में भेद है, माया मलिन–जगत् का उपादान है और महामाया या बिन्दु का नामान्तर कुण्डलिनी है– सिर्फ जगत् का उपादान। शुद्ध जगत् परमेश्वर से अन्त:संकल्प के प्रभाव में आविर्भूत होता है। अशुद्ध जगत् परमेश्वर के प्रभाव में माया से आविर्भूत होता है। शुद्ध जगत् जड़, अशुद्ध जगत् भी जड़ है, किन्तु शुद्ध जगत पर सविकल्प ज्ञान का प्रभाव नहीं पड़ता। किन्तु (माया) अशुद्ध शक्ति पर सविकल्प ज्ञान का प्रभाव है। बिन्दु अर्थात् कुण्डलिनी परमेश्वर के निर्विकल्प ज्ञान के प्रभाव से परिणाम प्राप्त करती है। किन्तु माया परमेश्वर के निर्विकल्प ज्ञान के प्रभाव से प्रभावित नहीं होती। माया ईश्वर के अधीन है। यही मायिक–जगत् के उपादान हैं। ईश्वर–तत्त्व अविकल्प ज्ञान के द्वारा माया को क्षुब्ध करते हैं। माया क्षुब्ध होकर मायिक–जगत् में कार्यरूप में परिणत हो जाती है। ईश्वर बिन्दु को क्षुब्ध करने में समर्थ है। बिन्दु अथवा महामाया ईश्वर के ज्ञान के अधीन नहीं है। सृष्टि के प्रारम्भ में परमेश्वर के ज्ञान के प्रभाव में बिन्दु क्षुब्ध होकर शुद्ध जगत् के आविर्भव को सूचित करता है। बिन्दु परिग्रह–शक्ति है, क्योंकि यही उपादान है। चित्शक्ति की कर्मवाहिनी शक्ति है। क्योंकि यह चिदात्मशक्ति से अभिन्न है। इस परम्परा को हर वक्त स्मरण रखना उचित है। शुद्ध जगत् के नीचे से ऊपर–शुद्ध विद्या, ईश्वर, सदाशिव, शिव और शक्ति है। बिन्दु या कुण्डलिनी शुद्ध शक्ति– निर्मल देह के उपादान हैं। माया मलिन का उपादान, शुद्ध देह का पर्याय वैन्दव देह है। परमेश्वर की अनुग्रह–शक्ति के प्रभाव से बिन्दु (वास्तव में ज्योतिस्वरूप) देहाकार में परिणत हो जाता है। इसका नाम ज्ञानदेह है। यह परमेश्वर की कृपा से होता है। कुण्डलिनी–शक्ति अथवा चिदाकाश महामाया का पर्याय है। शिष्य को जब दीक्षा प्राप्त होती है तब वह ज्योतिर्मय वैन्दव देह प्राप्त करता है। यह दो स्थितियों में सम्भव है। जब महाप्रलय से जगत् ध्वंस हो जाता है तब उसका मलपाक पूर्ण होता है और परमेश्वर वैन्दव देह से संयोग कर देते हैं। यह देह कुण्डलिनी–शक्ति से बनता है। जब जीव मायिक देह में रहता है तब भी मलपाक होने पर बिन्दु

बन जाता है। प्रलय–स्थिति तथा सृष्टिकाल–स्थिति में अन्तर है। प्रलयकाल में मलपाक होने पर माया में एक ही वैन्दव देह प्राप्त होता है। लेकिन सृष्टिकाल में मलपाक होने पर भी वैन्दव देह प्राप्त होता है, पर मायिक देह के साथ; दोनों देह परस्पर संयुक्त होकर मिल जाते हैं–एक मायिक देह और दूसरा वैन्दव देह। कुण्डलिनी–शक्ति एक ओर सुप्तवत् पड़ी रहती है। अगर यह क्षुब्ध हो जाय तो इसमें से शुद्ध शब्दों का आविर्भाव होता है जिसे 'नाद' कहते हैं।

मूलाधार से आज्ञाचक्र तक मनुष्य के शरीर में छह मूल चक्र हैं। मूलाधार में जो चक्र है, उसमें चार मातृकाएँ हैं, उसका नाम है 'चतुर्दल कमल'। कमल और चक्र में भेद है। जब कुण्डलिनी सुप्त रहती है तब उसका नाम चक्र होता है। कुण्डलिनी के जागने पर उसका नाम 'कमल' हो जाता है। चक्रावस्था में जो मातृका कमल की अवस्था में है–वही कमलों का दल है। इस प्रकार मनुष्य के शरीर में सुषम्ना नाड़ी के साथ छह चक्र हैं–पाँच चक्र पंचभूत के साथ सम्बन्धयुक्त हैं और ऊपरवाला चक्र चित्त के साथ सम्बन्धयुक्त है अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि।

मूलाधार में जब कमल प्रस्फुटित होता है तब उसके चार दल होते हैं। उसके ऊपर स्वाधिष्ठान में षट्कमल–यहाँ छह मातृकाओं का विकास होता है। मणिपूर में दशदल कमल–दस मातृकाएँ प्रकट होती हैं। हृदय के अनाहत चक्र में द्वादशदल कमल होता है। कण्ठस्थल में षोड़शदल कमल का विकास होता है। भौंहों में आज्ञाचक्र है–यहाँ द्विदल कमल का विकास होता है। समष्टि में पंचाशत मातृका, पंचदश कमल। इसमें रहस्य है। द्विदल में दो वर्ण हैं। ऊपर 'ह' कार और नीचे 'स' कार रहता है। 'ह' कार बिन्दुयुक्त है। मूलाधार में जो चतुर्दल कमल है, इसमें सबसे नीचे 'स' कार रहता है–यही विसर्गयुक्त है। ऊपर 'ह' कार बिन्दु, नीचे 'स' कार विसर्ग, यही है प्राणशक्ति। योगियों के निकट यही 'सोऽहं' होता है। जो अजपा जप करता है, वही इसका रहस्य जानता है। शरीर के भीतर असंख्य नाड़ियाँ हैं, बहत्तर हजार–मोक्ष नाड़ी बत्तीस। मोक्ष चतुर्दश या द्वादश होते हैं जिनमें तीन मुख्य हैं–इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना। इड़ा वाम मार्ग में तथा पिंगला दक्षिण मार्ग में–इसकी गति सरल नहीं होती। इन्हीं दोनों मार्गों से श्वास–प्रश्वास की गति प्रवाहित होती है। इन दोनों की गति सरल है। इसे सुषुम्ना कहते हैं। इसके बाद वज्रनाड़ी, फिर चित्रिणी नाड़ी, फिर ब्रह्मनाड़ी–यही अखण्ड है।

सुषुम्ना में प्रवेश के बिना इस महाशक्ति का जागरण नहीं होता। सुषुम्ना में प्रवेश तभी सम्भव होता है जब इड़ा–पिंगला का आवर्त समाप्त हो जाता है। पर यह काल का आवर्त है जब कि सुषुम्ना काल का नाशकारी है। योगी का लक्षण है सुषुम्ना में प्रवेश कर ब्रह्मनाड़ी में स्थान ग्रहण करना। वेदान्त का आनन्दमय इसके साथ सम्बन्धित है। इसमें जाने का क्रम है। प्रत्येक चक्र में तीन अंश होते हैं। सबसे पहले मातृका या वर्णमाला, इसके बाद नाद, इसके बाद बिन्दु। मातृका को व्यावहारिक रूप में 'कला' कहा जाता है।

बिन्दु, नाद और कला यही तीन अंश हैं। पहले प्रवेश करना पड़ता है मलाधर में। प्रवेश

में भी गूढ़ रहस्य द्वार है। इस द्वार को खोलना पड़ता है। यह हर वक्त बन्द रहता है। जब विरुद्ध शक्तियों के संघर्ष से साम्यावस्था की सृष्टि होती है तब नीचे से चिदग्नि का उद्दीपन होता है, इन दोनों के विरुद्ध शक्तियों का शक्तिनाश तथा प्राण-अपान का जब साम्य होता है तब उसका नाम होता है-समान'। साम्य से जिस अग्नि का विकास होता है, उसका नाम 'उदान' और ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश के समय 'व्यान'।

इसी चिदग्नि के द्वारा मूलाधार चक्र की प्राचीरों को गलाना पड़ता है। मूलाधार की प्राचीरें मातृकामय हैं। प्राचीरों के गलने के बाद द्वार खुल जाता है। एक के बाद एक चार मातृकाएँ हैं। प्रत्येक मातृका उसके संस्पर्श से गल जाती हैं, वर्णभाव दूर हो जाता है और नादभाव आता है। नादभाव आने के साथ-साथ उसकी ऊर्ध्वमुखी गति प्रारंभ हो जाती है-मूलाधार में ऊर्ध्वगति होती है। बिन्दुस्थान सुषुम्ना नाड़ी का एक स्टेशन है। मूलाधार का अन्य वर्णों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। वर्ण गलकर नाद बनते ही सम्बन्धयुक्त होता है।

सुषुम्ना में विशिष्टता है-सुषुम्ना निरन्तर ऊर्ध्वगति से चलती है। इसमें आकार चक्रभेद होता है और बिन्दु में परिणत होता है। आज्ञाचक्र में एकमात्र बिन्दु रहता है। मातृका समाप्त हो जाती है। यहाँ शिवनेत्र रहता है-ज्ञानचक्षु-यह भी खुल जाता है। यहाँ दो मार्ग होते हैं। एक सहस्त्रदल में जाने का मार्ग और दूसरा ब्रह्मरन्ध्र में। एक परमेश्वर की ओर और दूसरा ब्रह्म की ओर जाने का मार्ग है।

प्रेम, सहानुभूति, सम्मान, मधुर वचन, सक्रिय हित, त्याग और निश्छल सत्य के व्यवहार से ही तुम किसी को अपना बना सकते हो। तुम्हारा ऐसा व्यवहार होगा तो लोग तुम्हारे लिए बड़े-से-बड़े त्याग करने-हेतु तैयार हो जायेंगे। तुम्हारी लोकप्रियता मौखिक नहीं होगी। तुम्हारे लिए लोगों के हृदयों में बड़ा मधुर और प्रिय स्थान सुरक्षित हो जायगा। तुम भी सुखी हो जाओगे और तुम्हारे सम्पर्क में जो आयेंगे, उनको भी सुख-शान्ति मिलेगी।

हमारी आध्यात्मिकता

– डा. शंकर दत्त ओझा, आई. ए. एस.

किसी भी राष्ट्र अथवा जाति को कालजयी व उत्कृष्ट बनाने के लिये केवल उसकी आध्यात्मिकता ही मानदण्ड हुआ करती है। जिस देश या जाति का आध्यात्मिक स्तर व चिन्तन मनन जितना उन्नत होगा उतना ही उन्नत उस देश की संस्कृति होगी। पाश्चात्य देशों की सभ्यता भौतिकतावादी रही है। वहाँ आध्यात्मिक चिन्तन का कोई महत्त्व नहीं है। 'खाओ पियो और मौज मनाओ' वहाँ के जीवन का मन्त्र है, जबकि हमारे देश में तत्त्वज्ञान की पहचान कर उसके मूल में पहुंचने वाले चिन्तकों की एक अति प्राचीन परम्परा ही रही है। सनातन मूल्यों की खोज व उनकी प्राप्ति भारतीय जीवन दर्शन का मन्तव्य रहा है। हमें जब भी विश्वसभ्यताओं की पंक्ति में गिना गया है तो सिरमौर के रूप में और विश्व के अग्रणी के रूप में।

भारत ने आध्यात्म के क्षेत्र में अभूतपूर्व उन्नति की है। विश्व को हमने इसकी शिक्षा दी है। हमारी मान्यता है कि मानव जीवन केवल भोग के लिये ही नहीं है, बल्कि आत्मा को ऊंचे शिखर तक उठाने के लिये है। जीवन इस आत्मिक उन्नयन के लिये मुख्य साधन है। आध्यात्म मरणशील मानव को अमरत्व पद प्राप्त करा देता है। समस्त जड़ चेतन का जन्म परमेश्वर से हुआ है। एक मूल गर्भ से कण–कण की उत्पत्ति के इस सिद्धान्त में सभी प्राणियों में मूलभूत एकता का बोध निहित है। यही धारणा हमारे 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का आधार भी है। यह संसार उसी मूलकारण व मूलजनक से शक्ति प्राप्त करता है, उसी के प्रकाश से प्रकाशित है तथा उसी की अहैतुकी कृपा से स्थित है। **'ईशावास्योपनिषद्'** में कहा गया है :–

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मागृध: कस्यस्विद्धनम्।।

अर्थात् सभी पदार्थ किसी एक व्यक्ति के नहीं हैं, ये सब परमेश्वर के हैं। इन्हें अपना मानना आसक्ति हैं। अतएव आसक्ति त्यागकर ही इन पदार्थों का भोग करना चाहिए।

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानु पश्यति।
सर्वभूतेषु यात्मानं ततो न विजु गुप्सते।।

(ईशावास्योपनिषद् 6)

मनुष्य प्राणिमात्र में केवल परमेश्वर को देखता है वह फिर किसी व्यक्ति से घृणा या द्वेष कैसे कर सकता है।

यस्मिन् सर्वाणि भूतात्मा सैवाभूव् विजानत:।
तत्र को मोह: क. शोक एकत्वमनुपश्यत:।।

(ईशा. 7)

जब मनुष्य को सर्वत्र परमेश्वर ही दिखायी देता है तो उस समय उसके अन्तः करण में शोक, मोह आदि स्वार्थी विचार नष्ट हो जाते हैं। वह तो भगवदानन्द में डूबा रहता है। उपनिषदों में मानव जीवन के लिये दो मार्ग बताये गये हैं.

श्रेयः मार्ग तथा प्रेयः मार्ग। श्रेयः मार्ग कल्याण का मार्ग है तथा प्रेयः मार्ग सुख भोग का मार्ग है। स्पष्ट है कि पहला मार्ग काँटों से भरा कठिन मार्ग है और दूसरा मार्ग फूलों का मार्ग दिखायी देता है। दूसरे शब्दों में शास्त्रों में प्रथम को निवृत्ति मार्ग व दूसरे को प्रवृत्ति मार्ग कहा गया है। हमारी यह धारणा पाश्चात्य देशों की अवधारणा से सर्वथा भिन्न है। वहाँ इन दोनों मार्गों में परस्पर कोई तालमेल नहीं है जबकि गीता का निष्काम कर्मयोग इन दोनों ही मार्गों का मंजूल समन्वय है। गीता कर्म के त्याग की बात नहीं करती, अपितु कर्म के फल से सन्यास का उपदेश करती है। गीता के अनुसार कर्म में प्रवृत्ति अनिवार्य है जो होनी चाहिये, किन्तु कर्मफल से निवृत्ति होनी चाहिए। जीवन के प्रथमार्ध काल में मनुष्य भोग से समृद्ध होता है जबकि जीवन के उत्तरार्ध में वह भोग के परित्याग से समृद्ध होता है। प्रवृत्ति मार्ग में मनुष्य संसार में लिप्त रहता है जिसके कारण वह ईश्वर से विमुख रहता है, किन्तु निवृत्ति मार्ग में वह ईश्वर के सम्मुख होता है जिसके फलस्वरूप वह सांसारिकता से विमुख रहता है। भोग-वैराग्य का यही मंजुल समन्वय भारतीय आध्यात्मिकता का मुख्य उद्देश्य रहा है। यही हमारी आध्यात्मिक विजय रही है।

यह अध्यात्म मार्ग जीवन को भौतिकवाद से ऊपर उठा देता है। मनुष्य सर्वत्र तथा समस्त जड़-चेतन में एकता का दर्शन करता है। यह एकता का दर्शन मनुष्य को फिर दुःख से अभिभूत नहीं करता। हमारी आस्था है कि ईश्वर का स्वरूप प्रकाश एवं आनन्दमय है। वह परमेश्वर आनन्द का अतल, पारहीन महासागर है जिसमें जीव जब एक बार प्रविष्ट हो जाता है तो उसमें डूबकर आनन्द विह्वल हो उठता है। फिर उसे दुःख और मृत्यु न सताते हैं न डरा सकते हैं। मृत्यु जीवन का अन्त नहीं है। वह तो हाड़माँस के शरीर का परित्याग मात्र है। मनुष्य की आत्मा अजर व अमर है। वह आत्मा कर्म के संस्कारों के अनुसार शरीर रूपी वस्त्र ओढ़कर जन्म लेता रहता है। आत्मा की यह यात्रा कभी समाप्त नहीं होती। यही आत्मा की 'अनन्तता' है और यही उसकी 'अमरता'।

हमारे यहाँ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-ये चार पुरुषार्थ माने गये हैं। आध्यात्मिक वृत्ति हमें धर्म और मोक्ष दोनों को प्राप्त करने की प्रेरणा देती है। इन चारों पुरुषार्थों में आपस में सामंजस्य लाना ही जीवन की कसौटी है। हमारे शास्त्र आध्यात्मिकता की शिक्षा से ओतप्रोत हैं आध्यात्मिक भाव के कारण ही मनुष्य में संवेदना, सहानुभूति, उदारता और सह अस्तित्व के भावों का जन्म होता है।

उपनिषदों में आत्मज्ञान, मोक्ष एवं ब्रह्मज्ञान प्रतिपादित किये गये हैं। बाद के भारतीय साहित्य में इन्हें 'आत्मविद्या' या 'ब्रह्मविद्या' के नाम से जाना गया है। इस विद्या का ज्ञान होते ही सभी अनर्थों को जन्म देने वाले क्रियाकलापों का नाश हो जाता है। इसके कारण अविद्या

(अज्ञान) के बन्धन टूट जाते हैं और ब्रह्मविद्या की प्राप्ति हो जाती है।

हमारे तत्त्वज्ञाता महर्षियों ने जीवन–जगत् की वास्तविकता पहचानने के लिये मूलभूत शक्तियों को खोजकर व उन पर चिन्तन–मनन कर जो जीवन–दर्शन बनाया है उन्हीं का निष्कर्ष उपनिषदों में है। ऋषियों ने जन्म, स्थिति एवं नाश के कारणों का अनुसन्धान कर बतलाया है कि वह ऐसी तिकड़ी है जिसका न ओर है न छोर न आदि न अन्त। इस तिकड़ी का संचालक एक महानियन्ता परमेश्वर है जो अक्षुण्ण, अविकृत और अखण्ड है। यह परमपिता 'परमेश्वर' 'परब्रह्म' आदि नामों से पुकारा जाता है। कण–कण में, व्यक्ति व समष्टि में इसी परम शक्ति का सर्वदा निवास रहता है। आत्मा की यह खोज विश्व इतिहास में अभूतपूर्व है। इसे प्राप्त करने का एक मात्र साधन ज्ञान है और ज्ञान का निरूपण उपनिषदों में किया गया है। कितने विदेशी शासक एवं सभ्यताएँ भारत में आये, किन्तु उनकी अप्रचण्डता व बर्बरता को हमारी सर्वसहिष्णु संस्कृति ने बड़ी आसानी से आत्मसात कर लिया।

उपनिषदों में माया शक्ति की अभिनव कल्पना की गयी है। माया ऐसी अद्‌भुत शक्ति है जो विश्व को भ्रमित कर देती है। माया को ज्ञान अथवा विवेक की शक्ति से पहचाना जा सकता है। ज्ञान अर्थात् विद्या के परा तथा अपरा दो रूप बतलाये गये हैं। अपरा कर्म प्रधान विद्या है जिसका फल कालान्तर में मिलता है। परा विद्या ब्रह्म विद्या है। ब्रह्मविद्या के अभाव को अविद्या कहते हैं। यही अविद्या जीवन में बन्धन और आसक्ति का कारण है। उपनिषदों में विद्या, अविद्या,आत्मा, परमात्मा और ब्रह्म–माया के परस्पर विरोधी सम्बन्धों पर तर्क के आधार पर ऐसी एकता स्थापित की गयी है जो भारत के समन्वयवादी होने के मूल में रही है। यही मौलिक एकता वेदान्त का अद्वैत है जिसके अनुसार सभी वस्तुएँ सत्तावान् हैं तथा जिनमें एक ही परमेश्वर का निवास है। हमारे पूर्वज आध्यात्मिकता और परम तत्त्व की खोज में यूनान एवं समस्त यूरोपीय चिन्तकों से बहुत आगे निकल गये थे। हमारा 'अमरत्व' का जीवन दर्शन कल्याणमय विश्व की एक अतिविशाल एवं अतिव्यापक मंगलकामना है। जिससे संसार के सभी दार्शनिक व मनीषी बिना प्रभावित हुए नहीं रह सके।

महान दुःख

गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त अवेद्य नाथ जी नही रहे।

बड़े ही दुःख की बात है कि गोरक्ष नाथ मन्दिर के महन्त अवैद्य नाथ जी का सितम्बर 12 को शाम 8 बजे देहावसान हो गया है। ये 94 वर्ष के थे। उनका जन्म सन् 1921 में उत्तराखण्ड में काँड़ी नामक गाँव में हुआ था। बाल्यकाल में ही आप गोरखपुर आ गये और महन्त दिग्विजय नाथ जी महाराज के शिष्य बन गये। उनके जीवन काल में ही उन्होंने इन्हें अपना उत्तराधिकारी बना दिया था। अपने गुरूदेव के पदचिन्हों पर चलते हुये अपने गुरूदेव के प्रारम्भ किये हुये कार्यों को आगे बढ़ाते रहे। राजनीति में सक्रिय भाग लेना शुरू किया। वे चार बार विधायक रहे तथा गोरखपुर से ही चार बार सांसद रहे। सन् 1992 में राम जन्म भूमि न्यास के अध्यक्ष रहे। आप एक जुझारू व कर्मठ सन्त के रूप में माने जाते हैं। आप हिन्दू–समाज के मसीहा थे। हिन्दुओं के चतुर्मुखी विकास के लिये हमेशा लगे रहे। एक बार आपका पदार्पण श्री सिद्ध गुफा सवांई, आगरा में रामनवमी के अवसर पर हुआ था और बहुत सारगर्भित भाषण भी हुआ था। हमारे गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज भी दो बार महन्त जी के आमन्त्रण पर गोरखपुर गये थे। सन् 1987 में लेखक भी गुरुदेव के साथ गया था। संभवत: महन्त दिग्विजय नाथ स्मृति सभागार का उद्‌घाटन समारोह था।

परम श्रद्धेय महन्त अवैद्य नाथ जी के देहावसान से सारा हिन्दू समाज दुःख के सागर में डूब गया। शोक की लहर चारों तरफ आग की तरह फैल गई। उनके अन्तिम दर्शन के लिये पूरे क्षेत्र से आये लोगों का दो दिन तक ताँता बना रहा, 14 सितम्बर को उन्हें समाधि दे दी गई। उनके सुयोग्य उत्तराधिकारी के रूप में योगी आदित्य नाथ हैं जो गोरखपुर से सांसद भी है।

इस महान दुःख के अवसर पर अपने गुरुदेव के वियोग से दुःखी पूज्य योगी आदित्य जी महाराज को श्री सिद्ध गुफा सवांई आगरा के समस्त सन्त गण एवं साधक गण अपनी हार्दिक दुःख संवदेना प्रेषित करते हैं। श्री प्रभु जी योगी जी को इस अपार दुःख को सहन करने की शक्ति दें तथा अपूर्व उत्साह एवं शक्ति से अपने कार्य में आगे बढ़ने की ताकत दें ताकि हिन्दू समाज व देश का हित हो सके।

शोकाकुल –

आचार्य दासलाल

व्यवस्थापक– श्री सिद्ध गुफा सवांई

आगरा (समस्त सन्त एवं साधक गण)

योग प्रचार कार्यक्रम

टोडरपुर, वाराणसी

10 अक्टुबर से
14 अक्टुबर तक

सभी भाई बहनों को सूचित करते हुये हर्ष हो रहा है कि जिला वाराणसी के टोडरपुर (Todarpur) गाँव जो नेशनल हाइवे पर स्थित है के पास ही योगयोगश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज साधना आश्रम में 10 अक्टुबर से 14 अक्टुब्र तक योग प्रचार का दिव्य कार्यक्रम निश्चित हो गया है। 14 अक्टूबर को भण्डारा रहेगा। इस कार्यक्रम में श्री सिद्धगुफा सवाई धाम के आचार्य डॉ. दासलाल जी सहित अनेक उत्कृष्ट विद्वान साधक पधार रहे हैं जो योग विद्या के गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन करेंगे। अतः सभी भाई–बहनों से प्रर्थाना है कि उक्त कार्यक्रम में आकर गुरुचरणों की कृपा प्राप्त करें व पुण्य लाभ लें।

—— निवेदक ——
योग प्रचार मण्डल, वाराणसी

कार्यक्रम स्थल –
योगयोगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज साधनाश्रम,
टोडरपुर, नेशनल हाइवे (नंदन आई.टी.आई. के बगल में)
सम्पर्क सूत्र – 09936036619, 09450708838,
09453357801, 08574406843

नोट – यह आश्रम राजा तालाब से 3 कि. मी. आगे, तथा वाराणसी शहर से 15 कि. मी. पहले है।

योग और विक्षेप

'अवधूत वासन्तेय'

योग साधना के प्रति सारा संसार आज आकृष्ट हुआ है। योग शब्द का अर्थ " समाधि" है। भाष्यकार व्यास ने 'योगः समाधि" कहकर स्पष्ट किया है। समाधि का अर्थ है समाधान। महर्षि पतञ्जलि ने 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' कहकर योग को चित्तवृत्तियों का निरोध बताया है। मन बुद्धि और अहंकार के समष्टि भूत अन्तःकरण को चित्त कहते हैं। प्रकृति के परिणामों में से चित्त में सबसे अधिक सतोगुण का प्रादुर्भाव होता है। एक धर्म आकार अथवा रूप को छोड़कर दूसरे धर्म, आकार अथवा रूप धारण को चित्त का परिणाम कहते हैं। समस्त स्थूल जगत रजोगुण तथा तमोगुण प्रधान परिणाम है। इसके बाहरी या भीतरी संसर्ग से चित्त सत्व में प्रतिक्षण होने वाले परिणाम को चित्त वृत्ति कहते हैं। चित्त वृत्तियाँ असंख्य है परन्तु योग में उन्हें प्रमाणादि पाँच वर्गों में विभाजित किया है। चित्त की जिस अवस्था में प्रमाणादि वृत्तियाँ समाधान को प्राप्त हो जाती है या निरुद्ध हो जाती है। वह अवस्था यौगिक अवस्था है। 'गुरुदेव' कहते थे अधिक पचड़ों में न पड़कर योग का सीधा अर्थ लगाओ। जब तुम चेतना के धरातल से भाव के धरातल में डूब जाओ और वह रसमयता तुम्हें आनन्द के समुद्र में डूबो दे तो तुम समझ लो कि योग साधना सफल हो गयी। उनकी दृष्टि में उत्कट एकाग्रता ही योग है।

चित्त की वृत्तियों का निरोध मूलतः दृढ़ अभ्यास से ही सम्भव है। अभ्यास और वैराग्य से चित्त वृत्तियाँ स्थिर होती हैं। अभ्यास निरन्तर मानसिक प्रसन्नता पूर्वक यम नियम आदि योगांगों के अनुष्ठान से संभव होता है। गीता में भी भगवान कृष्ण स्पष्ट संकेत देते हैं कि योगानुष्ठान प्रसन्नातापूर्वक सम्पन्न करना चाहिये गुरुदेव कहते थे कि तुम चित्त से परेशान क्यों होते हो ? चित्त तो स्वभाव से चंचल है। फिर अनादिकाल के संस्कार भी तो उसके साथ हैं। दो चार बैठकों में ही तुम वृत्तियों को शान्त कर लेना चाहते हो। अभ्यास करो। अभ्यास से दुसाध्य कार्य भी सहज हो जाते है यह सब श्रद्धा से होगा। नामों में श्रद्धा, नामदाता में श्रद्धा और नाम लेने के परिवेश के प्रति श्रद्धा। विषय वासना से युक्त मन अनादि जन्म से विचरण कर रहा है। वासनायें उसकी स्वाभाविक अंग बन गयी है। धैर्य पूर्वक निरन्तर अविस्मृति की आवश्यकता है। गुरुदेव प्रत्येक साधक को एक ही संकेत देते थे। अभ्यास का समय बढ़ाओ। अभ्यास की शक्ति बड़ी अद्भुत है। अभ्यास के बल पर नाचने वाली नर्तकी तुमने देखी है डोरी और बताशे पर भी नृत्य करती है। सर्कस के खेल में मनुष्य ही नहीं हाथी, घोड़े, शेर, चीते अपने स्वभाव के विपरीत कौतुक दिखाते हैं। इसलिये यदि योग के प्रति अनुरक्ति है तो योगांगों का निरन्तर चिन्तन करो। एक दिन तुममें योग का महासागर फूट पड़ेगा।

वैराग्य को गुरुदेव अधिक महत्व नहीं देते थे। वे अक्सर कहा करते थे हर कोई वैराग्य-वैराग्य कहता है। उसने वैराग्य ले लिया, 15 साल का लड़का वैरागी हो गया वह तो भयभीत लोगों की मानसिकता और दुनियाँ से पलायन मात्र है वैराग्य तो उसे कहते हैं जिसमें विकार का कारण उपस्थित होने पर भी विकार उत्पन्न नहीं होते ।किसी विषय के त्याग मात्र को वैराग्य नहीं कहा जा सकता है क्योंकि रोग की अवस्था में भी, विषयों में अरुचि उत्पन्न हो जाती है और वह विषय छूट जाता है। गुरुदेव ने एक बार एक साधक को फटकारते हुए कहा, तुम वैरागी बनते हो। अरे साधनों के अभाव में तुम मारुति नहीं खरीद पाये कार उसने खरीद ली। कहते हो मुझे भौतिक सुखों से कोई राग नहीं है यह वैराग्य है या तुम्हारी उसके प्रति द्वेष भावना। और अपनी कमी को छुपाने के लिये ढोंग भाव संसार को दिखाने के लिये ये सब क्यों करते हैं ? तुम्हारे मन में सूक्ष्म रूप में आज भी तृष्णा विद्यमान है। भाई विवेक से विषयों को पूर्णत: दुख रूप और साधन का हेतु समक्ष कर उसमें अनासक्त हो जाना तथा उसके प्रति सर्वथा संग दोष से मुक्त हो जाना ही भाग्य है। गीता के निम्न श्लोक को वे अक्सर दोहराया करते थे।

" न जातु काम: कामनामुपभोगेन शाम्यति
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते।।"

अभ्यास और वैराग्य से सम्पन्न चित्त साधक सहज में ही समाधि को प्राप्त कर लेता है। क्रिया योग में तप स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान से समाधि की पूर्णता शीघ्र होती है। प्रत्येक पुरुष वस्तुत: विषयों से असम्बद्ध होता है। किन्तु अज्ञान वश उसमें कर्त्तापन और भोक्तापन का स्वभावगत आरोप हो जाता है। और स्वयं को कर्त्ता और भोक्ता समझने लगता है जबकि वह पूर्णत: न कर्त्ता है और न भोक्ता। अहंकार व्यक्ति का आवरण बन जाता है और असंख्य विक्षेप उसको भटका देते हैं। वह सहज में ही भटक जाता है और भूल जाता है उस गंतव्य को जहाँ उसे जाना है योग शास्त्र में व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरक्ति, अशान्ति दर्शन, अलब्ध, भूमिकत्व, अनवस्थित्त्व आदि विघ्न हैं। ये सब चित्त में विक्षेप उत्पन्न करते हैं।

धातु रस एवं इन्द्रियों की विषमता से उत्पन्न रोगों को व्याधि कहते हैं। चित्त की अकर्मण्यता त्याग मैं योग में प्रविष्ट हुआ हूं। योग कर सकूँगा या नहीं योग साधन करने में भी मुझे समाधि सिद्ध होगी या नहीं इस प्रकार दोनों प्रकार के चिन्तन को स्पर्श करने वाला ज्ञान संशय है। समाधि के साधनों की भावना न करना प्रमाद है। तमो गुण की अधिकता से चित्त अथवा शरीर के भारीपन के कारण समाधि के साधन में दत्त न होना आलस्य है। सांसारिक विषयों में आसक्ति को अविरक्ति कहते हैं। अथवा कौन ज्ञान किस स्तर पर है यह न जानना ही भ्रान्ति दर्शन है। किन्ही प्रतिबन्ध के कारण समाधि की भूमिका का प्राप्त न होना लब्ध भूमिकत्व है। समाधि की भूमिका प्राप्त होने पर भी उसमें स्थिति न होना अनवस्थित्व है। गुरुदेव कहते थे यह नौ विक्षेप तुम नौ सीढ़ियाँ समझो। अरे किसी मुकाम तक पहुंचने के लिये तो हजारों सीढ़ियाँ होती हैं उन्हें पार करने पर ही ऊपर पहुंचा जाता है। मन तो बनाओ पार हो ही जाओगे । अगर

कोई साधक कहता कि आज कल मैं अस्वस्थता के कारण साधन नहीं कर पा रहा हूँ तो गुरूदेव टका सा उत्तर देते भइया कहीं शरीर रोगी होता है ? तुम मुझे ही देखो कितने ही रोगों ने मुझे घेर रखा है। परन्तुये रोग मेरे मन को प्रभावित नहीं कर पाते और फिर चित्त तो उधर जाता ही नहीं। तुम निरन्तर शरीर का चिन्तन क्यों करते हो ? अगर शरीर का रोग, योग में व्यवधान होता तो भगवान रामकृष्ण परमहंस पर कैंसर का प्रभाव अवश्य होता। तुम शरीर हो ही कब ? तुम तो आत्मा हो इसलिये निरन्तर आत्म चिन्तन करो। अगर कोई साधक कहता गुरूदेव प्रातः नींद नहीं खुलती गुरूदेव का उत्तर होता तुमने अपनी आत्मा से क्यों नहीं कहा ? मन तो अकर्मण्य है वह कोई काम करने नहीं देता। तुम जब चाहो तब उठो। आत्मा से अच्छा गागरूक अलार्म तुम्हें कोई नहीं मिल सकता। वे संशय को सबसे बड़ा शत्रु मानते थे, " देखो भाई योग में संशय नही तमु निष्ठा से गुरू के शब्दों पर अन्ध विश्वास रखो तुम्हें समाधि लाभ होगा। वे समाधि के असंख्य अंगो में भावना करने को नहीं कहते थे। गुरुदेव का विचार था किसी शक्ति सम्पन्न साधक के साथ जुड़ जाओ फिर समाधि के सारे अंग अपने आप होने लगेंगे पर समाधि में विरन्तर भावना रखना मत भूलो। आलस्य को भी वे हटाने का ही निर्देश देते थे। विषयासक्ति को भी ईश्वर प्राप्ति में बाधक मानते थे समाधि की निरन्तरता का प्राप्त न होना उनकी दृष्टि में मात्र अविस्मृति योग का अभाव था। यदि साधक निरन्तर ईश्वर प्राणिध्यानके साथ ईश्वर में लगा रहेगा तो उसे निश्चित आनन्दातुभुत होगी। गुरुदव इन सारे विक्षेपों को दूर करने का साधन बताते थे एक निष्ठा दृढ़ विश्वास। जिससे सम्पूर्ण विक्षेप समाप्त हो जाते हैं। उनहा संकेत रहता था भक्ति पूर्वक ईश्वर को सब कर्म अर्पित हो कर उसी के भरोसे रह कर उसका नाम जप भावना करो। इससे तुम कृपा के घेरे में आ जाओगे। न वे तुम्हें भटकने देंगे न तुम्हारे चारों ओर विक्षेपों को फटकने देंगे और तुम्हे समाधि से शुद्ध, मन, बुद्धि मेरे नहीं है मैं पूर्ण आनन्द हूँ मेरास्वरूप आनन्द है। उसमें आत्मा अनन्द है। फिर विक्षेप कैसे? योगी ही योग, पूर्ण समाधि, अहम ब्रह्मास्मि?। यही है अनन्त की साधना और आनन्द का रस। गुरुदेव की वाणी निरन्तर मुझे प्रेरित कर रही है। मैंउनके ए-एक शब्द को अनुभूत कर रहा हूँ आनन्द।

श्रीमद्भागवत में योग-परिचर्चा

– डॉ. विजय सिंह जी

चौथे स्कन्ध के आठवें अध्याय में श्री ध्रुव जी की कथा वर्णित है। पहले बताया जा चुका है कि आदि मनु एवं शतरूपा से प्रियव्रत और उत्तान पाद दो पुत्र हुये। उत्तानपाद के सुनीत एवं सुरुचि दो पत्नियाँ थी। रानी सुनीत में राजा उत्तान पाद का प्रेम कम था। वे सुरुचि के प्रेमा शक्त थे। सुनीत को एक पुत्र ध्रुव था। सुरुचि को उत्तम नाम का ध्रुव से छोटा पुत्र था।

ध्रुव जब मात्र पाँच वर्ष के थे, उस समय विमाता सुरुचि द्वारा अपमानित होकर अपनी माता सुनीत के पास रोते हुये गये। सुनीत ने सौत की कठोर कथन सुनकर तथा ध्रुव के कोमल चित्त पर हुये आघात को जानकर ध्रुव से कहा–बेटा! तुम किसी के अमंगल की कामना न करा। जो दुःख देता है, उसे उसका फल भोगना पड़ता है। मैं चाहती हूँ तू भगवान के चरण कमलों की आराधना में लग जा। वे ही सर्व के आराध्य हैं। उनकी आराधना से ही लौकिक, अलौकिक तथा मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है।

माता रूपी प्रथम गुरु के उपदेश को बुद्धि द्वारा दृढ़ता से गहन कर ध्रुव नगर से निकल पड़े जंगलों की ओर। अन्तर्द्रष्टा श्री नारद जी ध्रुव से रास्ते में मिलकर, ध्रुव के मस्तक पर हाथ फेरते हुये पूछे और जंगल में जिस कारण से ध्रुव आया है जानकर बोले–बेटा! कर्मानुसार ही मान–अपमान या सुख–दुःख प्राप्त होता है। नारद जी ध्रुव के मन की दृढ़ता जानने हेतु उससे कहते हैं कि तू माता के उपदेश से योग–साधन द्वारा जिन भगवान की कृपा प्राप्त करने चला है, मेरे विचार से साधारणतया भगवान को प्रसन्न करना बहुत कठिन है। योगी लोग अनेक जन्मों तक अनासक्त रहकर समाधि योग के द्वारा बड़ी–बड़ी कठोर साधनायें करते रहते हैं। परन्तु उनके दर्शन प्राप्त नहीं होते। इसलिये तू हठ छोड़कर घर लौट जा। बड़ा होने पर परमार्थ साधन के लिये प्रयत्न करना –

अथ मात्रोपदिष्टेन योगेनावरुरुत्ससि।
यत्प्रसादं स वै पुंसां दुराराध्यो मतो मम।। 30।।
मुनयः पदवीं यस्य निःसंगेनोरुजन्मभिः।
न विदुर्मृगयन्तोऽपि तीव्र योगसमाधिना।। 31 ।।

स्कं.4 अ. 8

उपरोक्त कथन द्वारा हतोत्साहित करने पर ध्रुव ने कहा–महात्मन्! मुझे क्षत्रिय स्वभाव घोर रूप में प्राप्त है। मुझे मेरी विमाता के कटु वचन हृदय विदिर्ण कर दिया है, अतः मैं त्रिलोकी में सबसे श्रेष्ठ पद है उसे प्राप्त करूँगा। कृपया मुझे उसी की प्राप्ति का साधन बताइये। ध्रुव की

दृढ़ता देख श्री नारद जी प्रसन्न हुये और उस पर कृपा करके (शक्तिपात) सदुपदेश दिये और आज्ञा दिया कि अब तुम यमुना जी के तटवर्ती परम पवित्र मधुवन में जाकर कालिन्दी के जल में त्रीकाल स्नान कर आसन पर स्थिर भाव से बैठ, फिर रेचक, पूरक, कुम्भक–तीन प्रकार के प्राणायाम से धीरे–धीरे प्राण, मन और इन्द्रियों के दोषों को नष्ट कर धैर्य युक्त मन से परमगुरु श्री भगवान का मेरे बताये रूप से ध्यान करना।

प्राणायामेन त्रिवृता प्राणेन्द्रिय मनोमलम्।

शनैर्व्युदस्याभिध्यायेन्मनसा गुरुणा गुरुम् ।।44।।

स्क.4, अ.8

शक्तिपात कर श्री नारद जी ने ध्रुव को भगवान के साकार विग्रह का वर्णन करते हुये धारण–ध्यान की विधि का उपदेश किया। ध्रुव को मंत्र दान किया तथा उसका प्रभाव बताते हुये बोले–वत्स ! इस ध्यान के साथ मेरे बताये मंत्र का जो जाप करता है, वह सात रात्रि जपने के प्रभाव से ही आकाशचारी सिद्धों का दर्शन कर सकता है –

जप्यश्च परमो गुह्यः श्रूयतां में नृपात्मज।

यं सप्तरात्रं प्रपठन पुमान पश्यति खेचरान ।।53।।

श्री नारद जी से इस प्रकार उपदेश पाकर ध्रुव ने परिक्रमा करके उन्हें प्रणाम किया तथा तपोवन की यात्रा में चल पड़े। कथा विस्तृत है, सभी सुधी पाठक अवगत होंगे ही। अंततोगत्वा, ध्रुवजी के कठिन तपका वर्णन किया गया है, जो योगमय है। वे तीन दिनों उपरान्त केवल कवल कैथ एवं बेर के फल खाकर एक माह साधनारत रहे। दूसरे महीने छः दिन के अन्तराल से सूखे घास पत्ते खाकर योग रत रहे। तीसरे माह नौ दिनों के अन्तराल पर केवल जल पीकर समाधियोग द्वारा श्री हरि की आराधना में लीन रहे –

तृतीयं चानयन्मासं नवमें नवमेऽहनि।

अभक्ष उत्तमश्लोकमुपाधावत्समाधिना ।।74।।

चौथे मास में व पाँचवे माह में, उन्होंने श्वास को जीतकर परमब्रहम का चिन्तन करते हुये एक पैर से अचल खड़े हो गये –

चतुर्थमपि वै मासं द्वादसे द्वादशेऽहनि।

वायुमक्षो जितश्वासो ध्यायन्देवमधारयत।। 75।।

पाँचवें महीने की साधन दशा देखें– उस समय ऐन्द्रिक विषयों से अपने मन को खींच कर हृदयस्थित हरि के स्वरूप में चित्त को लगा दिया। उस समय प्रकृति और पुरुष के भी अधीश्वर परब्रह्म की धारणा किया। उनका तेज असहनीय होने के कारण तीनों लोक काँप उठा। वे प्राणों को रोककर अनन्य बुद्धि से विश्वात्मा श्री हरि का ध्यान करने लगे। उनकी विश्व प्राण से अभिन्नता होने के फलः स्वरूप सभी जीवों का श्वासारोध हो गया। लोक और लोकपाल

सभी पीड़ित हुये तथा घबराकर श्री हरि की शरण में गये –

तस्मिन्नभिध्यायति विश्वमात्मनो,

द्वारं निरुध्यासुमनन्यया धिया।

लोका निरुच्छ्वासनिपीड़िता भृशं,

सलोकपालाः शरणं ययुर्हरिम् ।।80।।

लोकपालों के प्रार्थना सुनकर भगवान ने उन्हें आश्वस्त किया और स्वयं गरुड़ पर चढ़कर ध्रुव के पास मधुवन आये। नवमें अध्याय में भक्त ध्रुव को दर्शन, वरदान की कथा कही गयी है। भगवान श्री हरि जिस समय मधुवन पहुँचे उस समय उन्होंने देखा ध्रुव तीव्र योगाभ्यास से एकाग्र हुई बुद्धि के द्वारा समाधिस्थ थे। भगवान के पहुँचने पर ध्रुव जी ने देखा कि बिजली के समान देदिप्यमान श्री प्रभु का स्वरूप जो वे हृदय कमल में ध्यान कर रहे थे, वह सहसा विलीन हो गया–वे घबराकर व्याकुलता के साथ नेत्र खोले तो उन्हें वही रूप में साक्षात भगवान का दर्शन हुआ –

स वै धिया योगविपाकतीव्रया,

हृत्पद्म कोडि स्फुरितं तडित्प्रभम्।

तिरोहितं सहसैवोपलक्ष्य,

बहिः स्थितं तदवस्थं ददर्श।।2।।

स्क. 4, अ. 9

बालक ध्रुव प्रेम में अधीर श्री प्रभु के चरणों में दण्ड समान गिर पड़ा। श्री प्रभु द्वारा स्नेह दान पाकर मौन खड़ा एक टक उनके अलौकिक रूप माधुरी को नेत्रों से पीता रहा। भगवान ने वेदमय शंख को ध्रुव के गाल से स्पर्श करा दिया। जिसके परिणामतः ध्रुव जी को दिव्य वेदमय वाणी प्राप्त हो गयी तथा प्रकृति और पुरुष तथा ब्रह्म के स्वरूप का निश्चित ज्ञान हो गया।

अब ध्रुव जी ने श्री हरि की स्तुति करने लगे– मैं आप अन्तर्यामी भगवान को प्रणाम करता हूँ। मुझे तो आप उन विशुद्धहृदय महात्मा भक्तों का संग दीजिये, जो सदैव आप में रमे रहते हैं। उनके संग में मैं भी आपके गुणों और लीलाओं की कथामृत पान कर उन्मत्त हो जाऊँगा और सहज ही भवसागर पार कर जाऊँगा। प्रभो जैसे तुरन्त जन्मे बछड़े को गौ दूध पिलाती और संकट से उसे बचाती है, आप भी अपने शरणागतों पर निरन्तर कृपा करते रहते हैं जिससे संसार भय से उनकी रक्षा होती है।

भगवान ने ध्रुव को अविनाशी पद दिया जिसके चारों ओर ग्रह, नक्षत्र, तारागण घूमते रहते हैं। अभी तुम छत्तीस हजार वर्ष तक पृथ्वी का धर्म पूर्वक राज्य करो। अन्त में तुम सप्तर्षियों से भी उपर मेरे निज धाम को प्राप्त करोगे जहाँ से पुनः संसार में लौटना नहीं पड़ता।

इधर ध्रुव जी जब नगर के समीप पहुँचे उनके पिता उत्तानपाद ने गौरव पूर्ण ढंग से

स्वागत किया तथा प्रेमाश्रु से उन्हें नहला ही दिया। सभी ध्रुव के प्रति लाड़ प्यार प्रकट कर रहे थे। तरूणावस्था प्राप्त होने पर ध्रुव जी को राज्य पर अभिषिक्त कर,स्वयं आत्मस्वरूप का चिन्तन करते हुये वन को चले गये।

दसवें ग्यारहवें अध्याय में, यक्षों द्वारा लघु भ्राता उत्तम का मारा जाना तथा यक्षों से युद्ध आदि का विशद वर्णन किया गया है। पुनः स्वायम्भुव मनु का ध्रुवजी को युद्ध बंद करने का आदेश देना और समझाना बेटा ध्रुव ! तुम अपने क्रोध को शांत करो। क्रोध कल्याणमार्ग का बड़ा विघ्न है।

बारहवें अध्याय में यक्ष राज कुवेर द्वारा ध्रुवजी को वरदान की कथा कही गयी है। श्री ध्रुव जी द्वारा शरीर त्याग की कथा पूर्ण योगमय है –

तस्यां विशुद्धकरण : शिववार्विगाह्य

बद्ध्वाऽऽसनं जितमरुन्मनसाऽऽहृताक्ष:।

स्थूले दधार भगवत्प्रतिरूप एतद्

ध्यायंस्तद व्यवहितो व्यसृजत्समाधौ।।17।।

स्क.4, अ.12

ध्रुव जी ने प्राणायाम द्वारा वायु को वश में करके भगवान के स्थूल विराट स्वरूप में अपने चित्त को स्थिर कर दिया। अन्त में ध्याता और ध्येय के भेद से शून्य निर्विकल्प समाधि में लीन हो गये। उन्हें तब यह भी भान नहीं रहा कि " मैं ध्रुव हूँ"। वे शरीर त्याग भगवान द्वारा भेजे अलौकिक विमान में चढ़कर उस परम पद को प्राप्त हुये।

मेरे श्री गुरुदेव और उनका प्राकट्य दिवस

– कुंवर ए.के.सिंह एडवोकेट, कछवा, मीरजापुर

श्री गुरु पूजन निशदिन करो, गुरु चरणन मन लाय।
जिन के भाग्य महान हैं, वे पूजें गुरु जाय।।
श्री गुरुदेव की भक्ति से, मिले ज्ञान विज्ञान।
इसी से मिलता मोक्ष है, कोऊ न "श्री गुरुदेव" समान।।

प्रातः स्मरणीय पल–पल–स्मरणीय आनन्दकन्द अखिल ब्रह्माण्ड नायक योग–योगेश्वर अनन्त विभूषित श्री चन्द्रमोहन जी महाराज, मेरे श्री गुरुदेव का अवतरण इस अवनि मण्डल पर आश्विन शुक्ल पक्ष तिथी दशमी विजय दशमी को शुभ वेला में हरियाणा प्रान्त के जिला करनाल की तहसील पानीपत के पास एक छोटे से गाँव " अलुपुर " में हुआ। इस महान विभूति के पदार्पण के साथ ही पवित्र नगर 'अलुपुर' के साथ ही सकल विश्व गुंजायमान हो उठा। जन्म के साथ ही श्री गुरुदेव जी बालकाल से ही भगवान श्री कृष्ण चन्द जी के विशेष अनुग्रह कृपा प्रधान थे। बाल काल से ही त्रिजग पावन अखिलात्मा आनन्द कन्द भगवान श्री कृष्ण चन्द जी का विशेष अनुग्रह था। उन्हें चलते–फिरते, उठते–बैठते भगवान श्री कृष्ण चन्द्र जी का सानिध्य था। कई एक बार तो हरीयाणे की भाषा में बचपन में अपनी माता जी से उन्होंने पूछा ' माँ यह छोरा किसका है , यह तो बड़ाही सुथरा (सुन्दर) है। इतना पूछने पर माता कहती –नहीं बेटा ! यहाँ कोई छोरा–वोरा नहीं है, तू अपना खेल। माताजी के कहने पर आनन्द कन्द श्री गुरुदेव चुप हो जाते। अपने खेल में लग जाते। आनन्द कन्द भगवान श्री कृष्ण चन्द्र जी की कृपा बराबर बनी रहती।

एक बार तो आश्चर्य जनक घटना घटी, एक बार इनके पिता जी ने एक टोपी बनवा दी जिसमें पीछे लम्बी लटकन जैसा बनवा दी जिसे फरगल कहते हैं। श्री गुरुदेव भगवान टोपी पहन कर खेलने गए तो साथ में अखिलात्मा भगवान श्री कृष्ण चन्द जी भी खेलने आये, तो श्री गुरुदेव भगवान जब घर पर अपनी माँ के पास आये तथा उलहाना कहने लगे कि माँ मेरी टोपी का फरगल अच्छा नहीं है, जो साथ में एक लड़का और आता है उसकी टोपी भी बहुत अच्छी है तथा उसका फरगल काफी अच्छा है तथा उस पर मोर मुकुट भी है, हमें वैसा ही चाहिए। माता जी बोली बेटा चन्द्र यहाँ तुम्हारे साथ ऐसा कोई बच्चा नहीं है जो टोपी और फरगल पहन कर आता है। किन्तु फरगल पहनने वाले के विषय में श्री माता जी कुछ भी समझ नहीं पाती थीं। किन्तु फरगल वाला तो कोई और ही होता था, माताजी सामान्य कोई गाँव के बच्चे को समझती थी। 'पूत के पांव पलने में ही दिखाई दे जाते हैं' उक्त कहावत को उपर्युक्त बातें चरितार्थ करती हैं।

करुणानिधान श्री गुरुदेव भगवान अपने जन्म के पूर्व ही अपने होने वाले पिता को काफी दिशा निर्देश कर चुके थे, कि अपनी पत्नी (अर्थात होने वाली माँ) को क्या–क्या दिखाए, खान–पान की दिशा निर्देष कैसा होना चाहिए। यद्यपि श्री गुरुदेव भगवान की माता जी पौराणिक विचारों वाली थी। जिनका शुभ नाम श्री माता चरती देवी था। किन्तु श्री पिता जी पूज्य श्री देवी राम शर्मा जी आर्य विचारों के थे। आर्य समाज के एक बहुत कुशल प्रचारक थे। अपने पुत्र को वे इसी विचारों से ओत–प्रोत करना चाहते थे। किन्तु होना कुछ और ही था। इनके पूज्य पिता श्री इन्हें उच्च शिक्षा हेतु लाहौर ले गये। वहाँ डी ए वी. कालेज के संस्कृत विभाग में प्रवेश ले लिये। तथा उच्च शिक्षा वहीं प्रारम्भ हुई। वहाँ के प्रधानाचार्य श्री आचार्य विश्व बन्धु जी थे। श्री आचार्य जी बहुत ही ऊँचे विचारों के व्यक्ति थे। वे काफी विद्वान थे। श्री गुरुदेव बताया करते थे कि आचार्य श्री विश्व बन्धु जी बहुत ही तपस्वी एवं भारत वर्ष में उच्चतम विद्वानों में से एक थे।

कृपानिधान श्री गुरुदेव जी इस आर्य विद्यालय में अध्ययन करते हुए भी अखिलाला त्रिजाग पावन भगवान श्री कृष्ण की कृपा एवं सानिध्य बना रहता था। श्री गरुदेव यहीं से भगवान श्री कृष्ण चन्द्र की लीला स्थल वृन्दावन का कार्यक्रम बना लिए एवम् विद्यालय लगभग ढाई वर्ष पश्चात छोड़ दिया। विद्यालय छोड़ते समय जब इनके आचार्य जी ने श्री गुरुदेव भगवान से पूछा–बेटा ! तुम विद्यालय छोड़ कर क्यों जा रहे हो ? ब्राह्मण को तो विद्या का धनी होना चाहिए, इतनी ऊँची उच्च शिक्षा को छोड़कर तुम जा रहे हो। तुम विद्यालय मत छोड़ो, यहीं रहो। " तो श्री आचार्य जी को आनन्दकन्द कृपा निकेतन श्री गुरुदेव भगवान क्या कहते हैं– 'श्री आचार्य जी मैं शायद आर्य न रह पाऊँ।" श्री आचार्य जीने कहा हंसकर कि तो क्या मुसलमान बनेगा। तो श्री गुरुदेव भगवान ने कहा, नहीं आचार्य जी, मुसलमान तो मैं कभी भी नहीं बनूगा। श्री आचार्य जी ने कहा तो क्या बनेगा ? श्री गुरुदेव भगवान ने जवाब दिया– 'मुझे श्री कृष्ण जी बड़े प्यारे लगते हैं। मैं तो वही जा रहा हूँ। वहीं से श्री गुरुदेव भगवान वृन्दावन की ओर चल दिये।

क्रमशः श्री गुरुदेव भगवान ने सन् 1942 से अखण्ड ज्योति ब्रह्माण्ड नायक योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलालजी महाराज की तपस्थली श्री सिद्धगुफा सवाई धाम को केन्द्र बनाकर सम्पूर्ण विश्व में सिद्धयोग का प्रचार–प्रसार किया, करते चले आ रहे हैं। श्री गुरुदेव भगवान सनातन विचारों के होने के कारण बिल्कुल साधारण सफेद धोती व सफेद कुर्ता धारण करते थे। इनका जीवन बिल्कुल सादा एव वैराग्य पूर्ण था। जीवन में किसी प्रकार का आडम्बर नहीं था। सादा धोती –कुर्ता धारण कर साधारण वेश में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को धारण किए थे।

एक बार ऋषिकेश प्रवास करते हुए श्री गुरुदेव भगवान के मन में तीव्रतम विचार धाराएँ इस प्रकार की बनी कि कहीं एकान्त जंगलो में चलूँ। ऐसे घोर वन जंगलो में चलूँ जहाँ किसी भी प्रकार से साधारण जन समाज का प्रवेश बिल्कुल न हो। इस प्रकार श्री गुरुदेव भगवान के मन में श्री बद्री नारायण के मन्दिर के ऊपर शतपथ में जाने की धारणा प्रबल हो गई। तथा दूसरे ही दिन शतपथ जाने का विचार दृढ़ बना लिया। और श्री गुरुदेव भगवान, योगयोगेश्वर श्री प्रभु जी

को कोई सूचना नहीं दी। और चुपचाप आश्रम का कार्य अपने भाई चिरंजी लाल जी को देकर, अपने शरीर पर विभूति वगैरह लगाकर, जटा वगैरह बनाकर लगभग दिन के 11 बजे ऋषिकेश आश्रम के फाटक से आगे दाहिना कदम निकाले, उसी समय पोस्ट मैन एक लिफाफा देता है जो श्री गुरुदेव भगवान के ही नाम से पत्र होता है। जिस पत्र में आनन्द कन्द परम अन्तर्यामी योग योगेश्वर श्री प्रभु रामलालजी महाराज का संदेश है– बेटा चन्द्रमोहन ! हम बास्तियों में बैठे हैं और तुम वनों को जा रहे हो, यह उचित नहीं है। जो कदम तुमने आगे बढ़ा लिया है उसे पीछे हटा लो। अभी तुम्हें काफी सेवाएँ करनी हैं बहुत बड़ा काम प्रभु तुमसे करायेंगे। इसलिए वन न जाकर के आश्रम की सेवा में लग जाओ।" यह योगयोगेश्वर महाप्रभु जी का अमर सन्देश पत्र पाकर हमारे परम कृपानिधान श्री गुरुदेव चन्द्रमोहन जी महाराज अपने स्थूल शरीर के अन्तिम समय तक श्री प्रभुजी की अखण्ड ज्योति ' सिद्धयोग ' का प्रचार–प्रसार किया। साधारण वेश में रहते हुए समस्त ब्रह्माण्ड नायक थे। कोई भी साधारण मनुष्य उन्हें समझ नहीं पाया। जिन्हें उन्होंने उचित समझा उसे अहसास करा दिया एवं कराते चले आ रहे हैं।

यद्यपि आनन्दकन्द अखिल ब्रह्माण्ड नायक कर्तुम अकर्तुम की सामर्थ्य रखने वाले श्री गुरुदेव भगवान के करुणा कृपाओं को हम सब तुच्छ मानव द्वारा कलम बद्ध करना सूर्य को दीपक दिखाने जैसा ही कार्य है, किन्तु हम सब को इन्हीं कृपा–लीलाओं का लेखन–पाठन करना ही उनकी चरण–कमलों को याद करना है। एक घटना का जिक्र कर रहा हूँ, हमसब के एक श्री गुरु भाई जी जो ब्रह्मचारी जी हैं जिनका नाम आदरणीय ब्र. बृजमोहन वशिष्ठ जी हैं। जो रहने वाले उ.प्र.के ननौता नामक जगह से है जो आजकल अलीगढ़ जिले की खैर तहसील में श्री प्रभुजी का आश्रम बनाकर श्री सिद्धयोग का प्रचार–प्रसार कार्य कर रहे हैं। आदरणीय ब्रह्मचारी जी ने श्री करुणानिधान श्री गुरुदेव की सेवा में श्रद्धा एवं लगन से की। श्री गुरुदेव भगवान की सेवा करते रहते तथा पुनः अपने घर ननौता चले जाया करते थे। एक बार इनके पेट में पथरी की शिकायत हो गई। लापरवाही पूर्वक इलाज कराने तथा टालमटौल करने से बीमारी ने भयंकर रूप ले ली। पेट में बराबर दर्द बना रहता था। इनके परिवारजनों ने उन्हें चण्डीगढ़ पी.जी.आई. में दिखाया वहाँ मेडिकल टेस्ट वगैरह के पश्चात डाक्टरों ने आपरेशन की सलाह दी। तथा इनसे स्वीकृति लेकर आपरेशन की तिथी भी दे दी। इधर ब्रह्मचारी भाई बृजमोहन जी आपरेशन से काफी डरते थे। आपरेशन का सुनकर इन्हें बड़ा भारी कष्ट हुआ तथा भय रखने लगे। इन विकट परीस्थिति में भाई जी को श्री सद्गुरु शरणागत ही एक मार्ग प्रतीत हुआ तथा श्री कबीर दास जी की उक्ति चरितार्थ की–

दुःख में सुमिरन सब करें।
सुख में करें न कोय।।
जो सुख में सुमिरन करें।
तो दुःख काहे को होय।।

इस प्रकार प्रथम आपरेशन की तारीख डाक्टर लोगों की व्यस्तता से टल गई। दूसरी भी तारीख किसी कारणवश टल गई या ये नहीं करायें। इसी बीच ब्र. ब्रजमोहन वशिष्ट जी के किसी नजदीकी गुरुभाई द्वारा श्री कृपानिधान भक्त वत्सल आनन्द कन्द श्री गुरुदेव भगवान को उनकी बिमारी के बारे में ज्ञात हुआ तथा ये भी जाना कि आपरेशन के लिए चण्डीगढ़ आ जा रहे हैं।

देखिए कृपा कैसे होती है –

भगवान भक्त के वश में कैसे होते हैं और वो अन्तर्यामी भगवान कैसे लीला करते हैं और मान–सम्मान किसी और को देते है स्वयं अमानी बने बैठे होते हैं। ये उनके परिचित के मुख से सुनते ही उसकी करूण पुकार को। आनन्दकन्द श्री महाराज जी ब्रह्मचारी बृजमोहन जी को एक पत्र द्वारा आशीर्वाद ही नहीं असम्भव को सम्भव करते हैं। पत्र लिखते हैं –" लल्ला बृजमोहन तुमने अपनी बीमारी के बारे में छिपाये रखा, हमें कुछ भी बताया नही। तुमने अपनी बीमारी के बारे में हम से छिपाये रखा, तुमने यह उचित नहीं किया। हमें कल ही यह पता चला तथा यह भी कि तुम चण्डीगढ़ इलाज आपरेशन वगैरह के लिए जा रहे हो। तो लल्ला योगी बच्चों का आपरेशन हो यह उचित नहीं होता तुम पत्र पाते ही तत्काल आश्रम चले आओ। तुम्हे बार–बार–आशीर्वाद। उधर जब पत्र ब्र. बृजमोहन भाई के पास पहुँचा तो दो बार आपरेशन टल जाने के बाद तीसरी तारीख पर आपरेशन थिएटर में ब्रह्मचारी जी को लिटाया गया है। और सुबह 11–12 बजे आपरेशन होनी थी। जब पत्र इन्हें मिला तो बड़े ही असमंजस में कि क्या करूँ। इस बीच ये बड़ी ही तन्मयता के साथ श्री चरणों में निवेदन करते रहे। उसी समय एक जूनियर डाक्टर आकर कहता है कि डॉ. साहब जिसे आपरेशन करनी है किसी इमर्जेन्सी केस में हैं। अब आपरेशन शाम को ५ बजे होगा। ये सूचना पाते ही ब्र. भाई जी बड़े उत्साह में तथा चिन्ता मुक्त महसूस की। और तब तक के लिए इन्हें फ्री कर दिया गया। और बिना किसी डाक्टर से बात किये सिर्फ अपने घर वालों को कहकर कि मैं आश्रम जा रहा हूँ श्री गुरुजी ने बुलाया है। कहकर झोला लेकर सीधे आश्रम सवाई धाम की यात्रा पर निकल पड़े। दूसरे दिन शाम को ये सवाई आश्रम पहुँचे। श्री महाराज जी के चरणों में गिर पड़े। श्री महाराज जी गोद में लेते हुए बड़े प्यार में कहते है – " देखो ऐ योगियों के बच्चे चले ही हैं आपरेशन कराने। अरे योगी बच्चों को आपरेशन शोभा देती है क्या ? अपनी अँगुलियों को पेट में गड़ाते हुए – कि दिखाओ कहाँ–कहाँ है पथरी। देखूँ तो कितना बड़ा है पथरी। इसी तरह कहते जा रहे हैं तो पेट में अँगुलियाँ गड़ाते जा रहे है। श्री ब्रह्मचारी वशिष्ठ जी को ऐसा प्रतीत हुआ तथा अनुभव हुआ कि चार पाँच अँगुलियाँ गड़ाने के बाद लगता था कि पेट में कुछ हुआ ही नहीं है। क्योंकि इन्हें जैसा महसूस होता था वैसा कुछ नहीं। किन्तु अन्तर्यामी करुणा निधान श्री गुरुदेव भगवान ने कभी प्रदर्शन या मर्यादाओं का उल्लंघन न करते हुए कर्तुम अकुर्तुम की सामर्थ्य वाले बस धीरे से कहा कि लल्ला कल सुबह से ही योग जीवन तत्व साधन शुरु कर दो। इस प्रकार मात्र पन्द्रह दिन

आसन करने के उपरान्त भाई जी स्वस्थ्य हो गए। ये है अपने श्री गुरुदेव की अन्तर्यामिता तथा एक अलौकिक कृपा।

श्री अखिल ब्रह्माण्ड नायक गुरुदेव योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के पावन जन्म दिवस पर कोटिश: दण्डवत के साथ उन्हीं के लिए सिद्धयोगियों द्वारा व्यक्त वाणी–

श्री ब्रह्मचारी योगर्षि देव रहा बाबा यह कहना कि

– मेरे ऐश्वर्य एवम् आराध्य आ गए

– आप अपने इन मनुष्यों के बीच कैसे रहते है हम योगियों के बीच एक प्रश्न चिन्ह है।

एक पगड़ी सर में बाँधते हुए–इस ब्रह्माण्ड के नायक आप हैं सब का ताज आप ही के सर पर है।

पापेन जायते व्याधिः पापेन जायते जरा।

पापेन जायते दैन्यं दुःखं शोको भयंकरः।।

अर्थात् पाप ही रोग, वृद्धावस्था तथा नाना प्रकार के विघ्नों का बीज है। पाप से रोग होता है, पाप से बुढ़ापा आता है और पाप से ही दैन्य, दु:ख एवं भयंकर शोक की उत्पत्ति होती है।

प्रेरक - प्रसंग

श्री गुरुदेव जी अपने प्रवचनों में स्वाध्याय पर विशेष बल दिया करते थे। स्वाध्याय के दो रूप हैं। एक तो गुरु प्रदत्त मन्त्र का खूब जाप करना तथा दूसरा मुक्तिप्रद वेद, उपनिषद् एवं योगपरक ग्रन्थों का अध्ययन करना स्वाध्याय है। श्री गुरुदेव एक प्रसंग सुनाया करते थे – एक योग जिज्ञासु सिद्ध दर्शन की अभिलाषा से पहाड़ों में घूम रहा था। चलते–चलते वह उत्तराखण्ड की ओर चला गया। भटकता–भटकता वह एक निर्जन स्थान में पहुँच गया। वहाँ उसे एक ब्रह्मचारी साधु मिला। उसने पूछा – तुम यहाँ क्या करने आये हो? जिज्ञासु ने कहा – मैं सिद्ध दर्शन करना चाहता हूँ। ब्रह्मचारी ने कहा – तुम तीन दिन इधर ही रुको। इसके बाद मैं अपने सिद्ध योगिराज गुरुदेव से मिला दूँगा। तीन दिन बाद ब्रह्मचारी ने गुरुदेव से मिलाया। गुरुदेव ने पूछा – तुमने कितना स्वाध्याय किया है? उसने कहा – मैंने गायत्री के कई पुरश्चरण अनुष्ठान किये हैं। गुरुदेव ने पूछा – उपनिषद् पढ़े हैं? उसने उत्तर दिया – नहीं। महाराज मैंने उपनिषद् नही पढ़े हैं। योगी गुरुदेव ने कहा – पहले जाकर उपनिषदों का अध्ययन करो। इस क्षेत्र में रहने का अधिकारी हर व्यक्ति नहीं होता है। खाने वाले एवं सोने वाले व्यक्ति को सिद्ध लोग अपने पास नहीं रहने देते हैं। वह अपनी योग माया से उन्हें बस्तियों में फेंक देते है। इसलिए तुम जाकर किसी योग्य गुरु से उपनिषद पढ़ो तब कहीं कालान्तर में तुम इस क्षेत्र में रहने के अधिकारी बनोगे। वह जिज्ञासु वापिस आया और सारी उपनिषद पढ़ डाली। दो–तीन वर्ष तक उपनिषदों का अध्ययन किया।

इस प्रसंग से यह बात सामने आती है कि सिद्ध दर्शन के लिए स्वाध्याय बहुत आवश्यक है। कई सिद्धयोग पत्रिका के पाठक कहा करते हैं कि कई लेख बड़े क्लिष्ट भाषा में हैं समझ में नहीं आते। उन्हें समझना चाहिए कि अध्यात्म विषय गूढ़ होता है। कई–कई बार पढ़ने पर समझने में आते हैं। योग के सिद्धान्त समझने में कठिन होते हैं, नियमित पठन–पाठन से ही समझे जा सकते हैं।

श्री सद्गुरु महिमा

-- स्व. श्री ईश्वरीप्रसाद खड्डर

जीवन दान अप्रैल 1955 की घटना है, मैं घाटकोपर स्टेशन (बंबई) पर सुबह 9–15 बजे की लोकल गाड़ी में प्रतिदिन की भांति सवार होने पहुंचा। इस गाड़ी से मैं प्राय: अपने कार्यालय–स्थल बोरी बन्दर (वी.टी.) जाया करता था। उस दिन गाड़ी के प्रत्येक डिब्बे के प्रवेशस्थान पर मुसाफिर खड़े हुये थे इस कारण अन्दर पहुँचना कठिन था। दो डिब्बों के बीच खाली स्थान देख कर मैं (BUFFER) बफर पर खड़ा हो गया और गाड़ी ने प्रस्थान किया। बाईकला स्टेशन निकल जाने के बाद जब हमारी गाड़ी पुल के नीचे मोड़ पर पहुँची तब झटका लगने से हमारे पैर बफर से फिसल गये। उस समय हमारी गाड़ी की गति 50–60 मील प्रति घण्टा थी। अकस्मात् हमारे मन ने ''प्रभो'' शब्द का स्मरण किया। उसी क्षण हमने अनुभव किया कि किसी शक्ति ने अपने कर कमलों का सहारा देते हुये हमारे समस्त शरीर को रेलगाड़ी के पहियों की भेंट होने से बचा लिया। उस दिन हमारी गाड़ी संडस्रोड स्टेशन पर खड़ी हुई और हम उस स्थान से आकर प्लेट फार्म पर खड़े–खड़े विचार करने लगे कि मुझे पतित को जीवन दान करने वाला दयालु कौन हो सकता है। हम यही सोचते रहे और हमारी गाड़ी हमें छोड़ कर चल दी। निष्कर्ष न निकलने पर हम अपने कार्यालय में पहुंचे। दो–तीन दिन तक विचार करते रहे परन्तु सन्तोषजनक फल न निकलने पर हमारा मन चिन्तित रहने लगा मानो हमारी प्रिय वस्तु खो गई हो। अगले दिन से मुझे अपने रहन–सहन, व्यवहार इत्यादि पर निसन्देह घृणा होने लगी। मेरे मन में झांसी वापिस आने के विचार उत्पन्न हुए और इतने प्रबल हो गये कि एक सप्ताह के भीतर तरक्की को ठुकरा कर मैं तबादले पर झांसी आ गया। कुछ दिन पश्चात् पुन: मैं बंबई तुल्य जीवन का रस पान करने लगा। इस भांति बीस माह व्यतीत हो गये।

14 दिसम्बर सन्। 1956 को स्वप्न में मुझे एक महान पुरुष के दर्शन हुए। अपने मुखारविन्द से उन्होंने इन शब्दों का उच्चारण किया, 'क्या तुझे इसलिए जीवन दान किया था कि तू अपने कर्तव्य से विमुख हो।''

मेरी निद्रा जाग गई। मैं तुरन्त उठा, स्नान करके समीप शिवालय पहुंच कर शंकरजी को एक लोटा जल चढ़ाया और प्रणाम करते ही मुझे एक महात्मा जी की झलक प्रतीत हुई। वह दृश्य आज भी मेरे नेत्रों के सामने स्पष्ट है जब मैं प्रभु जी के सन्मुख सिसकता हुआ अपने अपराधों के लिए क्षमा याचना कर रहा था। कुछ समय बाद मैं अपने निवास स्थान पर आकर नित्य कार्य में लग गया।

श्री कृष्ण–दर्शन

16 दिसम्बर सन् 1956 के प्रातः काल चार बजे मैं घूमने की दृष्टि से पहाड़ की ओर गया। अमुक स्थान पर पहुँचने पर मेरा मन अकारण प्रेम मग्न हो गया और तुरन्त ही मेरे कंठ से अकस्मात् पहली बार, 'हरिः ओम'' शब्द दूसरी और तीसरी बार भी सर्वोच्च ध्वनि से स्वतः निकल पड़ा। ठीक उसी क्षण मेरे नेत्रों ने श्री कृष्ण भगवान को सन्मुख प्रसन्नचित्त मुद्रा में देखा। मैं उस छवि को निहार ही रहा था कि मुस्कराते हुए वह बोले, 'अब चलो'। वह एक फुट आगे चल रहे थे और मैं पीछे चल रहा था। दायें–बायें ओर सीधी कतार में कुछ देवतागण थे जिनमें से श्री सरस्वती जी दायीं ओर और कैलाश पति बायीं ओर थे। ये समस्त देवता पृथ्वी से लगभग आठ फुट की ऊँचाई पर कतारों में खड़े हुए तथा कैलाशपति कमलासन पर सुशोभित हो रहे थे। इनकी छबियों को हम भली प्रकार देखते थे। विशेष बात यह थी कि हम लोगों के हाथ पैर गति–शील थे परन्तु उन सबके नहीं थे। श्री कृष्ण भगवान ने हमारा परिचश्य समस्त देवताओं से कराया। कुछ समय उपरान्त मैं अपने स्थान पर वापिस आकर कार्य में लग गया।

इस लालसा हेतु मैं प्रतिदिन प्रातःकाल घूमने जाता और वहाँ सत्संग होता रहा। यह कार्यक्रम लगातार तीन माह तक चलता रहा। कई अवसर इस बीच ऐसे आये कि इन नेत्रों को श्री गौतम बुद्ध, श्री पवनसुत इत्यादि देवताओं की छबियों को दो फर्लांग के क्षेत्र में दर्शन करने का पृथक–पृथक सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस प्रकार प्रातःकाल सत्संग होता था तथा सुषुप्त अवस्था में हमारे प्रभुजी उपदेश दिया करते थे। मुझ समान मूढ़ के ऊपर इस वातावरण का प्रभाव यह हुआ कि त्याग वृत्ति के विचार मन को अच्छे लगने लगे तथा एक घड़ी इस प्रकार की आई कि मुझे अकेले रहने में शान्ति मिलती थी, किसी मनुष्य से बातचीत करने को इच्छा नहीं होती थी और अन्त में मनुष्य मात्र से घृणा हो गई। मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि संसार पतितों से भरपूर है अतः रहने योग्य नहीं। इसका कारण केवल एक ही था कि दिनचर्या में श्री कृष्ण जी की छवि के बजाय भिन्न–भिन्न आकृतियाँ देखने में आती थीं तथा उनके व्यवहार से मन में खिन्नता उत्पन्न होती थी। एक रात्रि को हमारे प्रभु जी ने ताड़ना देते हुए मुझे यह उपदेश दिया, ''यदि तू मुझे पाना चाहता है तो मानव जाति से प्रेम कर''।

श्री सद्गुरु प्राप्ति

मेरी रुचि पुस्तकें पढ़ने की कभी न थी। परन्तु ''कर्ता के कछु और है–धर्ता के कछु और'' के अनुसार मुझे स्वामी रामतीर्थ तथा स्वामी विवेकानन्द जी की पुस्तकें पढ़ने के लिए मेरे एक मित्र ने मुझे बाध्य किया। उन पुस्तकों को पढ़ने में मुझे आनन्द आने लगा। मुझे ऐसा प्रतीत होता था मानो मेरी खोई हुई प्रिय वस्तु मुझे मिलने वाली है। अतः स्वामी रामतीर्थ जी के लेखानुसार हमने साधना आरम्भ कर दी। इससे हमारे मन को काफी शान्ति मिली। साधना काल में एक स्थिति इस प्रकार की आई कि पथ प्रदर्शक पाने की मन में इच्छा उत्पन्न हुई। यह इच्छा दिन प्रतिदिन प्रबल होती गई और एक समय ऐसा आया कि उसे पाने के लिए मैं व्याकुल

हो गया। पत्रोत्तर मिलने पर हम योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के स्थान, श्री सिद्धगुफा, सवांई (आगरा) निश्चित तारीख पर सपरिवार पहुँच गये। आश्रम पहुँचने पर हमने एक सज्जन को अपने सन्मुख पाया जो श्वेत कुर्ता और धोती धारण किये हुए थे। मेरे प्रश्नोत्तर में उन्होंने बतलाया कि जिस स्थान की खोज मैं कर रहा था वह ठीक यही है। साधारण भेषज्ञ को देखकर तथा अपने स्वाभाविक अज्ञान–वश मैं उन्हें पहचान न सका, कारण मेरी कल्पना कुछ विपरीत थी। इसलिए हम दोनों वहीं मुड़ कर टहलने लगे। पुनः सन्मुख आने पर उन सज्जन ने स्वतः हमारे मन की बात हमें कह सुनाई। मुझे तुरन्त आश्चर्य हुआ और खेद भी। आश्चर्य इसलिए था कि मन की बात बताने और सुनने की जीवन में प्रथम घटना थी और खेद इसलिए था कि पहचानने में मेरी भूल थी। मेरे मन में ऐसा प्रतीत हुआ कि "जिन सज्जन ने मन की बात बतलाई है कदाचित वे ही योगिराज जी हुए तब?" हमें आभास हुआ कि मन की बात बताने वाला महान पुरुष होना चाहिए। अतः तुरन्त ही मैंने उन्हें प्रणाम किया तथा अपनी भूल की क्षमा–याचना की। उन्होंने मुस्कुराते हुए मुझ से कहा, "कोई बात नहीं ऐसा हुआ ही करता है।, कुछ समय बाद आरती हुई और हमको आशीर्वाद देते हुए श्री महाराज जी ने प्रसाद दिया जिसका फल ठीक वैसा ही हुआ जो उनके मुखारबिन्द से निकला था। हम लोग झांसी आ गये। श्री महाराज जी ने एक दिन मेरी प्रार्थना स्वीकार करके अपने चरणाविन्दों में ले ही लिया। आदेशानुसार मैं साधना करने लगा। छुट्टी के दिन बहुधा मैं आश्रम ही पहुँच जाया करता था। शनैः शनैः श्री महाराज जी से संपर्क बढ़ता गया।

एक दिन करुणा–निधान ने मुझसे पूछा,'लल्ला क्या सोच रहे हो?' उत्तर में बहुत ही साधारण रूप से मैंने कह दिया, "कुछ नहीं प्रभो"। उनके पुनः आदेशानुसार मुझे अपने विचार स्पष्ट करना ही पड़े जो इस प्रकार थे। मैं सोच रहा था कि यहाँ आकर मैंने आध्यात्मिक विषय में कुछ पाया नहीं। श्री महाराज जी ने हमारे साथ जो घटनायें पूर्व घटी थीं विस्तारपूर्वक स्पष्ट करते हुए बतलाया कि प्रभुजी अपने बालकों पर भिन्न–भिन्न रूप से कृपा किया करते हैं इसलिए हमारा इस प्रकार विचार करना निराधार था। मैं अपनी भूल स्वीकार करते हुए श्री सद्गुरुदेव से क्षमा प्रार्थना की। श्री सद्गुरुदेवजी का आशीर्वाद पाकर हम अपनी साधना में जुट पड़े। कुछ ही समय बाद हमें साधना में आनन्द आने लगा जिसके फलस्वरूप मेरा मन निडर और प्रसन्न रहने लगा।

दिव्य चक्षु

योग योगिश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज एवं हमारे श्री सद्गुरु देव जी का केवल एक लक्ष्य मानव जाति का कल्याण करना है। दूसरे शब्दों में मनुष्य को स्वस्थ बनाना तथा इस योग्य कर देना जिसके फलस्वरूप वह प्रतिदिन उस सर्वशक्तिमान के दर्शन करता हुआ सदैव प्रसन्न चित्त रहे। श्री महाराज जी यह "कृपा" जिज्ञासुओं पर निश्चय करते हैं जिसके फलस्वरूप साधक को उत्साह मिलता है। "कृपा" शब्द से हमारा अभिप्राय ठीक वही है जो श्री

सद्‌भगवद् गीता के ग्यारहवें अध्याय के आठवें श्लोक में महायोगेश्वर श्री कृष्ण भगवान के मुखारविन्द से निकला है। जिस प्रकार श्री कृष्ण भगवान ने दिव्य चक्षु द्वारा अर्जुन का अज्ञान रूपी अंधकार एक क्षण में नष्ट कर दिया था ठीक उसी प्रकार हमारे हृदयेश श्री सद्‌गुरुदेव जी शरण में आये हुए बालक पर निसन्देह कृपा करते हैं। इस कृपा के आधार पर उसे बिलक्षण अनुभूतियाँ हुआ करती हैं – श्री राम, श्री कृष्ण, श्री सदाशिव आदि महान पुरुषों के दर्शन हुआ करते हैं। दूसरे शब्दों में समझना चाहिए कि श्री महाराज जी ध्यान योग शक्तिपात संपत्ति प्रदान करके मनुष्य का कल्याण करते हैं।

शक्तिपात का अनुभव प्रत्येक साधक को साधना काल में निश्चय हुआ करता है। श्री तुलसीदास जी ने लोकप्रिय ग्रंथ 'श्री रामचरित मानस' में जगह-जगह 'पुलकित भये गात' शब्दों का प्रयोग किया है। 'पुलकित' शब्द का अर्थ प्रायः सभी जानते हैं परन्तु जब उसके अनुभव का प्रश्न आता है तब अनभिज्ञता सुनने में आती है। श्री सद्‌गुरुदेव के चरणाविन्दों में स्थान पाया हुआ बालक अनभिज्ञ नहीं रहता यह अकाट्य सत्य समझना चाहिए। श्री महाराज जी की देन अपने बालकों के प्रति अद्‌भुत है। जो मन की एकाग्रता से आरम्भ होती हुई समाधि (परमानन्द) तक पहुँचा देती है।

जीवन तत्व

हमारे प्रभुजी ने शरीर को स्वस्थ बनाने अथवा स्वस्थ रखने हेतु अनोखे व्यायाम का निर्माण किया जो 'जीवन तत्व' के नाम से प्रसिद्ध है। इसे आदेशानुसार बालक करे या वृद्ध, स्त्री करे या पुरुष निश्चय लाभ होता है। साधना सरल है और फल विलक्षण-जैसा नाम वैसा गुण भी है। जीवन तत्व का आश्रय लेने वाला वृद्धापन का शिकार नहीं बनता इसका प्रमाण देखने, सुनने तथा स्वयं करने पर मिलता है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए जीवन तत्व साधन अचूक 'राम-बाण' है।

जीवन आनन्द

प्रत्येक प्राणी, मुख्य कर मनुष्य, शिशुकाल से वृद्धपन पर्यन्त, आनन्द की खोज में, जाने अथवा अनजाने, लगा ही रहता है। आनन्द की प्राप्ति के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के संघर्ष करता है जिनसे प्रायः सभी लोग परिचित हैं। इस संघर्ष के फलस्वरूप कोई बुद्धिमान, कोई धनवान, कोई शक्तिमान तथा कितने ही तीनों के अधिकारी होते हुए भी अपने लक्ष तक पहुँचने में असमर्थ रहते हैं। इसके दो कारण हो सकते हैं, पहला, ''आनन्द'' शब्द की परिभाषा से अनभिज्ञता, तथा दूसरा सत्संग का अभाव। सत्संग के लिये शक्तिशाली पथ-प्रदर्शक होना अति आवश्यक है। यह इसलिए कि निर्बल का निर्वाह सबल का आश्रय लिये बिना होता ही नहीं है। 'चमत्कार को नमस्कार' के अनुसार प्रत्येक प्राणी शक्ति को पूजता है। अभिप्राय यह है कि आनन्द और परमानन्द की प्राप्ति, योग्य मार्ग दर्शक द्वारा ही हो सकती है अन्यथा नहीं।

निष्पक्ष रीति से, मेरा निजी विचार है कि मनुष्य देह पाकर प्राणी को चाहिए कि अरुचि

अथवा समय का अभाव होते हुए भी वह सत्संग अवश्य करे।

जहाँ तक जिज्ञासुओं का सम्बन्ध है उन्हें सत्संग का लाभ बटोर लेना चाहिए। सिद्धेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के चरणाविदों में स्थान मिलने का मुझे गौरव है और वह इसलिए कि नैतिक, भौतिक तथा आध्यात्मिक विषयों के वे अद्‌भुत ज्ञाता है। उपरोक्त घटनाओं के अतिरिक्त जो व्यक्तिगत मेरे साथ घटी हैं तथा देखने और सुनने में आई हैं वे सबकी सब पुष्टि करती है कि आज के युग में, सर्व शक्तिमान साधारण भेष की ओट में, मनुष्य मात्र के कल्याण हित योगामृत वर्षा कर रहा है। ऐसे सद्‌गुरुदेव को पाकर हम उन चरण कमलों के हृदय से आभारी हैं जिन्होंने मुझ पतित को अपनाने की कृपा की है। अतः हम उन्हें बारम्बार साष्टांग प्रणाम करते हैं। वे प्राणी वास्तविक भाग्यशाली तथा सराहनीय हैं जिनका अनुराग श्री चरणों में है। हम उन्हें सप्रेम नमस्कार करते हैं।

योग-आसन

पश्चिमोत्तानासन

प्रसार्य पादौ भुवि दण्डरूपौ, दोर्भ्यां पदा ग्रद्वितय गृहीत्वा।।
जानूपरि न्यस्त ललाटदेशो, बसेदिदं पश्चिमोत्तानमाहुः।।

अर्थात् अपने दोनों पैरों को लम्बे भूमि पर फैलाकर दोनों हाथों से फैले हुए दोनों पैरों के अंगूठों को इस प्रकार तनाव के साथ पकड़ें कि पैर सिकुड़ने न पायें। उसके बाद अपने मस्तक को दोनों घुटनों के बीच लगा दें। इसी को पश्चिमोत्तान आसन कहते हैं।

करने की विधि – अपने दोनों पैरों को लम्बे फैलाकर व अपने दोनों हाथों को ऊपर की ओर से तनाव के साथ लाकर अपने फैले हुए दोनों पैरों के अँगूठे को इस प्रकार खींचकर पकड़ें कि फैले हुए पैर सिकुड़ न सकें उससे अपना ललाट देश (शिर) दोनों घुटनों के बीच में लगा दें, इसी को पश्चिमोत्तान आसन कहते हैं।

अभ्यास का समय – अपने शरीर के बलाबल को देखकर आधे मिनट या 20 सैकेण्ड से प्रारम्भ करें व प्रतिदिन पाँच या सात सैकण्ड बढ़ाते चले जायें और दो मिनट तक ले जायें। परमार्थ दृष्टि से करने वाले जिज्ञासु साधु लोग अभ्यास बढ़ाकर इसे आधा घण्टा व घण्टा तक बढ़ा सकते हैं।

लाभ –

इति पश्चिमोत्तानासनाग्रय, पवनं पश्चिम वाहिनं करोति।
उदयं जठरानलस्य कुर्यादुदरे, कार्श्यमरोगतां च पुंसाम्।।

अर्थात् यह उत्तमोत्तम पश्चिमोत्तान वायु को पश्चिमवाही करके जठराग्नि को बढ़ाता है, और पेट पतला करता है। पहिले जानुशिरासन में बतलाये लाभ इस आसन के अभ्यास से प्रायः सभी ही प्राप्त होते हैं। वायु को पश्चिमवाही करना कुण्डलनी जागृति का कारण बनता है। स्नायु मण्डल कोमल होकर उत्तमोत्तम रस रक्त का वहन करता है।

●●●

पश्चिमोत्तानासन

विनाश के कारणों से बचें

यूँ उत्पत्ति और क्षय, विकास और विनाश, जन्म और मृत्यु, उन्नति और पतन तथा सृजन और विध्वंस - ये सब एक ही सिक्के के दो पहलुओं के समान हैं यानी सृष्टि-नियमों के अन्तर्गत इन दोनों स्थितियों का होना प्राकृतिक रूप से अनिवार्य नियम है। इस नियम को बदला नहीं जा सकता, भंग नहीं किया जा सकता, यहां तक कि इसकी अवहेलना या उपेक्षा भी नहीं की जा सकती। प्रकृति प्रतिपल परिवर्तन करती रहती है, सृजन और विनाश करती रहती है, वृद्धि और क्षय करती रहती है, इस क्रम को तो नहीं रोका जा सकता लेकिन जो विनाश और क्षय हम अपने गलत कर्मों से, गलत आचरण से करते हैं उसे रोका जा सकता है। उन कारणों से बचा जा सकता है जो हमारे जीवन में विनाशकारी साबित होते हों। ऐसे कुछ कारणों पर जरा विचार करें।

यदि शासन के मन्त्री एवं अधिकारी लालची, धूर्त और ऐयाश हों तो शासन व्यवस्था का नाश होता है, शासन की नीति अस्थिर, बार-बार बदलने वाली और शोषण करने वाली हो तो प्रजा की सुख-सम्वृद्धि का नाश होता है, रईसों की संगति में संयम और नियम का नाश होता है, पुत्र कपूत साबित हो तो कुल की प्रतिष्ठा का नाश होता है, दुष्ट स्वामी की नौकरी करने से शील का नाश होता है, शराब पीने से लज्जा और मर्यादा का नाश होता है। इसी तरह स्वयं देखभाल न करने से खेती और व्यवसाय का, बराबर सम्पर्क न रखने से प्रीति का, लोभ करने से सम्मान का, क्रोध से विवेक का, ईर्ष्या से स्नेह और झूठ से विश्वास का नाश होता है। अहंकार से यश, चिन्ता से शरीर और अभिमान से प्रतिष्ठा का नाश होता है। अधिक भोगविलास से स्वास्थ्य, बुढ़ापे से सौन्दर्य और निकम्मेपन से प्रारब्ध का नाश होता है। ये नाश के अलग-अलग कारण हैं पर अधर्माचरण करने से तो मनुष्य के पूरे जीवन का ही नाश हो जाता है।

SIDDHYOG Postal Regd. No. : Ag. 19/2012-14

अक्टूबर 2014

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER

BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________________

____

____

आसीनो दूरं व्रजति शयनो याति सर्वतः।
कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति।।

(कठोपनिषद् 1/21)

परब्रह्म परमात्मा अचिन्त्यशक्ति हैं और विरुद्ध धर्मों के आश्रय हैं। एक ही समय में उनमें विरुद्ध धर्मों की लीला होती है। इसी से वे एक ही साथ सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान से महान बताये गये हैं। वे परमेश्वर अपने नित्य परमधाम में विराजमान रहते हुए ही भक्ताधीनतावश उनकी पुकार सुनते ही दूर से दूर चले जाते हैं। परमधाम में निवास करने वाले पार्षद भक्तों की दृष्टि में वहाँ शयन करते हुए ही वे सब ओर चलते रहते हैं। अथवा वे परमात्मा सदा-सर्वदा सर्वत्र स्थित हैं। वे सर्वत्र सब रूपों में नित्य अपनी महिमा में स्थित हैं।

संस्थापक :– योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा